UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182813
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H720.954 J24K Accession No. P.G. H193

Author जगदीशचन्द्र .

Title कल्पायात्री . 1954.

This book should be returned on or before the date last marked below.

कला-यात्री

जगदीश चन्द्र

प्रज्ञा-प्रकाशन, नागपुर

कला-यात्री

जगदीश चन्द्र

प्रज्ञा-प्रकाशन, नागपुर

प्रकाशिका
कमल कुमारी
नन्दूमल बिल्डिंग
बजरिया, नागपुर

प्रथम आवृति, दिसम्बर १९५४

समस्त अधिकार प्रकाशिका के आधीन

सादा पुस्तक मूल्य–१।)
कपड़े की जिल्द–१।।।)

मुद्रक
रामगोपाल श्रीवास
बजरंग मुद्रणालय
कर्नेलबाग, नागपुर

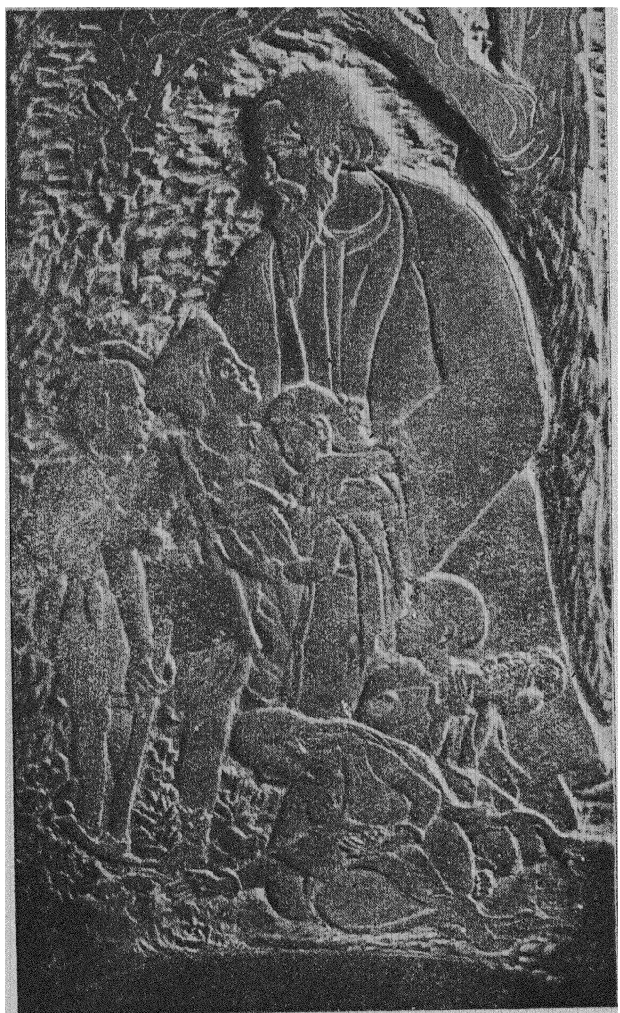

हमारे गुरुदेव

शिल्पी-श्री वि. मसोजी

आनेवाली नई पीढ़ी को —

बड़े प्यार के साथ, बड़ी आशा के साथ ।

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक मेरे उन पत्रों का संकलन है जो मैंने कई वर्ष पूर्व अपने छोटे भाई सत्येन्द्र को तब लिखे थे, जब मैं अपने ग्रंथ 'भारतीय देवता : उदय और विकास' के सिलसिले में भारत के प्राचीन कला-केन्द्रों की यात्रा कर रहा था। उसके बाद मैं अपने अध्ययन में जुट गया। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उक्त ग्रंथ का प्रथम खंड भी प्रेस में जा चुका है।..यह पत्र मेरे भाई ने मुझे वापस लौटा दिये और वे तब से अबतक किसी शाप-भ्रष्ट अहिल्या की भांति मेरी फाइल में ही पड़े रहे। उन पर मेरे दो-एक मित्रों की नज़र पड़ गई। फिर वे जब-जब मुझसे मिलते तब कहा करते, 'भाई गम्भीर साहित्य तो बहुत लिखा जा चुका है पर बच्चों के लिए हिन्दी क्या अंगरेजी में भी कोई ऐसी पुस्तक नहीं निकली जिससे उन्हें अपनी कला का परिचय भी मिल सके।' मैं उन्हें अपने ग्रंथ के विषय की महत्ता और उसका मौलिक आधार समझाने लगता, पर वे कहते 'यह तो ठीक है पर बच्चे भूगोल जानते हैं, गणित जानते हैं, इतिहास जानते हैं, पर अपने देश की कला और संस्कृति से अपरिचित रह जाते हैं। फिर यदि वे बड़े होकर उसके प्रति उपेक्षा दिखाने लगें तो उनका क्या दोष? आप उन्हें अपने विषय की कोई भूमिका तो देते ही नहीं।' आखिर यह संयोग भी आ गया कि कला गुरु श्री विनायक मसोजी की तूलिका ने उन पत्रों को छू दिया और यह सजीव होकर आपके सामने आ गये।

कला के ग्रंथों में चित्र आदि अधिक होने से इनका मूल्य स्वाभाविक रूप से इतना बढ़ जाता है कि वे उस जनता तक नहीं पहुँच पाते, जिसके मन में उनके लिए सच्ची भूख जग उठी है। ऐसी स्थिति में केवल एक ही मार्ग शेष रह जाता है, वह यह कि इनका प्रकाशन 'व्यवसायिक' धरातल पर न होकर 'मिशनरी' पर हो। पुस्तक में जो लागत लगे, उसी मूल्य में वह जनता तक पहुँचे। ज्यों-ज्यों उसकी मांग बढ़ेगी, वह और भी सस्ती होती जावेगी। प्रज्ञा-प्रकाशन इसी दिशा में एक क़दम है। यद्यपि हमारे साधन बड़े सीमित हैं पर 'मिशनरी' की निधि तो उसके मन की श्रद्धा होती है।

प्रज्ञा-प्रकाशन का यह परम सौभाग्य है कि उसे श्री विनायक मसोजी भू. पू. वाइस प्रिंसिपल, कला भवन, शांति-निकेतन, जैसे महान कलाकार का पूर्ण सहयोग प्राप्त है।

लेखक, श्री ईश्वर सिंह जी परिहार तथा श्री हनुमान प्रसाद जी तिवारी का अतीव अनुग्रहीत है जिनसे उसे प्रोत्साहन और सुझाव प्राप्त हुये हैं। उसके मित्र श्री लक्ष्मीकांत महाजन ने पुस्तक को बड़े चाव से संवारा है। भाई गजानन मुक्तिबोध, ललिता प्रसाद पुरोहित व 'विद्रोही' जी को कैसे धन्यवाद दूं? वे मेरे अपने हैं।

श्री न. शि. भुसारी ने इस छोटी सी पुस्तक को भी जिस मनोयोग से छापा उसके लिये मैं उनका तथा उनके सहयोगियों का आभारी हूँ।

— जगदीशचन्द्र.

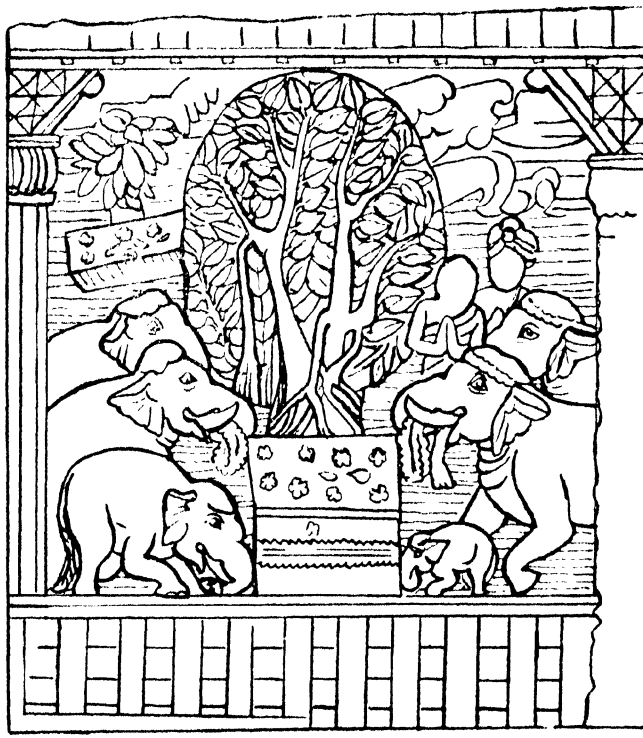

बोधि वृक्ष की पूजा —भरहुत

भरहुत

कलकत्ता,
१३-९-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

मुझे याद है जब मैंने अपनी यात्रा शुरू की थी, तब तुमने मुझसे पूछा था, 'दादा ! मैं भी चलूं ?' और मैंने तुम्हें निराश कर दिया था, 'नहीं, तुम रास्ते की तकलीफें न झेल सकोगे। मेरा क्या ठीक है ? न जाने कहाँ-कहाँ जाना पड़े ?' साथ ही मैंने तुमसे एक वादा भी किया था, 'मैं वहाँ जाकर जो कुछ देखूँगा वह तुम्हें लिखता रहूँगा।' कहने की ज़रूरत नहीं कि मैंने तुम्हें कलकत्ते के चिड़िया घर, बॉटनिकल गॉर्डन, व विक्टोरिया मैमोरियल आदि के सम्बन्ध में इतना लिखा है कि तुम्हारी आँखों के आगे उनकी हलकी सी तस्वीर नाचने लगी होगी। मैं अपने साथ जो कैमरा लाया था, उसी के लिए हुए कुछ फ़ोटो भी तुम्हें भेज रहा हूँ। यह उन अजीब पशुओं के हैं जो भारत में नहीं होते और जो यहां के चिड़ियाघर में लाये गये हैं।

तुमने लिखा कि तुम्हें मेरी कहानियों की याद आती है। भैया ! आज मैं तुम्हें कहानियाँ ही सुनाऊँगा। ऐसी कहानियाँ, जो हज़ारों साल पहले पत्थरों में आंक दी गई हैं।

सत्येन्द्र ! अपने देश के कलाकारों को कहानी कहना और सुनना उतना ही अच्छा लगता था जितना मुझे या तुम्हें। उन्होंने मूर्तियों के सहारे भगवान बुद्ध की जातक कथायें कहीं हैं।

तुम कहोगे गौतम बुद्ध को तो हम जानते हैं। हमने अपनी इतिहास की

पुस्तक में उनका जीवन पढ़ा है लेकिन यह जातक क्या हैं? जातक, बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथायें हैं। वे कभी राजा, कभी मंत्री, कभी हाथी और कभी हिरन आदि बनकर पैदा हुए और उस जन्म में भी उन्होंने क्षमा, शांति, दान, दया आदि गुणों को अपना कर सबको सुख दिया। यह कथायें इतनी मनोरंजक हैं कि बिना पूरा पढ़े पुस्तक छोड़ने को जी नहीं चाहता। इनके नायक बोधिसत्व हैं। बोधिसत्व वह है, जिसके मन में बुद्ध बनने की पुण्य इच्छा जग उठी है। जो औरों के सुख के लिए अपने प्राण तक निछावर कर देता है। जो अकेले स्वर्ग की कामना भी नहीं करता। उसी के आगे शिल्पियों के सिर श्रद्धा से झुक गये हैं और उसी की गाथायें चित्रित कर उन्होंने अपने को धन्य माना है।

मैं यहां का 'भारतीय संग्रहालय' देखने गया था। वहाँ भरहुत के टूटे हुये स्तूप के द्वार और खम्भे, जिनपर मूर्तियाँ आंकी गई हैं, सजा कर रख दिये गये हैं। भरहुत सतना के निकट विंध्य प्रदेश में है। इलाहाबाद से लगभग एक सौ बीस मील पड़ता है। पहले बौद्ध और जैन अपने महापुरुषों की स्मृति में, उनकी अस्थियों के ऊपर स्तूप बनाया करते थे। वे सोने की सन्दूकची में बन्द करके नीचे रख दी जातीं थीं और उनपर ईंटों की चिनाई कर दी जाती थी। कहते हैं कि सम्राट अशोक ने भारत भर में अस्सी हज़ार स्तूप बनवाये थे। भरहुत उन्हीं में से एक बताया जाता है। तुमने अशोक के शिलाओं पर खुदे धर्म-लेख और उनकी लाटों की बात तो इतिहास में पढ़ी ही होगी। इस स्तूप को ईसा से लगभग डेढ़ सौ साल पहले शुंग राजाओं ने पत्थरों से मढ़ दिया। इसके चारों ओर पत्थर की बाड़, जिसे वेदिका कहा जाता है, बनवा दी गई। उसमें ऊंचे-ऊंचे द्वार लगवा दिये गये, जिन्हें तोरण कहते हैं। उन पर भिन्न-भिन्न घटनायें आंक दी गईं।

जिनके पूर्व-पुरुष, कला के लिये इतने आस्थावान थे, उनकी संतान; हम अपने विचार-दारिद्र के कारण इनकी रक्षा तक न कर सके। लोग भरहुत के भग्न स्तूप के टुकड़े उठा कर ले गये। जो नहीं ले जा सके, वे इसलिए नहीं कि ले जाना नहीं चाहते थे बल्कि इसलिये कि वे भारी थे, उठ नहीं सकते थे।

सत्येन्द्र! कला के प्रति हमारी उपेक्षा का अंत नहीं है। आज भी शिक्षित समाज क्या उसको उसका उचित मान; उचित स्थान दे सका है? फ़ैशन के लिए भले ही कहता कुछ भी रहे। एक कहानी है। एक किसान के दरवाज़े पर एक अत्यंत सुन्दर मूर्ति पड़ी थी। किसान के लिये वह व्यर्थ की चीज़ थी। एक

दिन एक परदेशी आया। उसने पूछा, 'इसे बेचोगे ?' किसान हंसा, 'कैसा मूर्ख है यह ? यह भी कोई खरीदने बेचने की चीज़ है ?' उसने कहा 'नहीं भाई, इसे ऐसे ही ले जाओ। यह मेरे किसी काम में नहीं आती।' परदेशी ने किसान को एक रुपया बख्शीश के तौर पर दिया, जिसे उसने सलाम करके रख लिया। परदेशी मूर्ति उठा ले गया। उसने शहर में ले जाकर उसकी नुमाइश लगाई। दो रुपये टिकट रक्खा। किसान भी जो शहर आया था, दो रुपये देकर बड़े उत्साह के साथ उस मूर्ति को देखने गया जिसे उसने एक रुपये में बेच दिया था।

कला के महान ज्योतिर्धर डा. आनन्द कुमारस्वामी ने वर्षों तक अनेक कष्ट सहकर बहुत ही दुर्लभ प्रतिमाओं और राजपूत व कांगड़ा कलम के अनूठे चित्रों का संग्रह किया। वे चाहते थे कि यह भारत में ही रहे। उन्होंने देशवासियों से अपील की कि इन वस्तुओं के लिये काशी में एक संग्रहालय बने लेकिन किसी ने उनकी बात पर ध्यान न दिया। अंत में दुःखी होकर उन्हें वह सब कला-निधि अमेरिका ले जाने को विवश होना पड़ा। एक दिन मेरे एक मित्र ने उनके उस संग्रह के 'कैटलॉग' मेरे हाथों में देते हुये कहा, 'बहुत कीमती हैं। तीन सौ रुपये में लिये हैं।' तो मैं खलील जिब्रान की यह किसान वाली कहानी याद करके हंस दिया, क्षण भर बाद ही रो दिया।

कहते हैं कि कला-गुरु श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक दिन देखा कि एक युवक अपनी बूढ़ी मां को कंधे पर लादे मां-काली के दर्शन कराने लिये जा रहा है। उसके पास इतना पैसा नहीं था कि गाड़ी में चढ़कर आता। उनका मन श्रद्धा से भर उठा। उन्होंने आचार्य नन्दलाल जी वसु को जो उनके शिष्य थे, पुकार कर कहा, 'अवहेलिता मां को, भारत की कला को हम यों ही उठाये ले चलें। भले ही हमारी शक्ति सामान्य हो और विरोध असीम।' इतिहास साक्षी रहेगा कि उस एक ही महान आत्मा ने कला के पुनरुद्धार के लिए क्या किया ? उसी की प्रेरणा से आज भी कला के अनेक मौन साधक एकांत में अमर सृजन कर रहे हैं।

सत्येन्द्र ! मैंने, मेरी पीढ़ी ने विदेशी लोगों के शासन काल में शिक्षा-दीक्षा पाई है। हमारे मन पर गुलामी के संस्कार शेष हैं पर तुम स्वाधीन भारत के एक नागरिक होने जा रहे हो। क्या तुम मुक्त हृदय और मुक्त मन लेकर 'मां' को, कला को उसके सिंहासन पर बिठा सकोगे ? क्या मैं तुम्हारी और तुम्हारे साथिओं की ओर, तुम्हारी पीढ़ी की ओर, आशा भरी आंखों से देख सकता हूँ ?

हां, तो मैं कह रहा था कि सन् १८७३ में जनरल कनिंघम ने जब भरहुत का पता लगाया और वेदिका के खम्भे और तोरण के खंड इकट्ठे किये, तो उन्हें कुछ पत्थर, जिनपर अनुपम कला-कृतियाँ आंकी गई थीं, घाटों पर पड़े मिले। उनपर धोबी लोग कपड़े धोया करते थे।

भरहुत के स्तूप के यह अवशेष यहाँ 'भारतीय संग्रहालय' में हैं। यह ईसा से लगभग एक सौ पचास वर्ष पहले का शिल्प है। इससे पहले की कला मौर्य कालीन है, जिसका परिचय हमारे राष्ट्र की महामुद्रा अशोक स्तम्भ देती है। यह सारनाथ में है और इस पर सिंहों की बड़ी ओजवान आकृतियाँ हैं। इस शिल्प की पालिश बड़ी चमकदार है। वह क्या चीज़ थी जिससे पत्थर पर इतना ओप आ गया, इसका पता अबतक नहीं लगा है। बाद की मूर्तियों पर यह चमक नहीं दिखाई देती। मौर्य काल के अंतिम युग की यक्ष और यक्षणिओं की बड़ी-बड़ी प्रतिमायें भी मिली हैं, जिनमें परखम यक्ष और दीदार गंज की यक्षिणी भी हैं। भरहुत में भी कुबेर आदि यक्षों की मूर्तियाँ मिली हैं। भरहुत के शिल्प को मूर्ति न कहकर अर्ध-चित्र कहा जाता है क्योंकि यह पत्थर पर उभार देकर बनाई गई आकृतियाँ हैं।

भरहुत में नाग भी हैं। यह अत्यंत रूपवान है। यह मनुष्यों जैसे ही हैं। इनमें पुरुष के सिर के ऊपर पांच फन और स्त्री के ऊपर एक सर्प-फन तना रहता है। यही इनकी पहचान है। भरहुत में नागों के राजा चकवाको खड़े हैं। उनके मुख पर इतनी शांति और भव्यता है, मानों कोई देवता पृथ्वी पर उतर आया है। वे कंकन, भुजबन्द, हार और कुंडल आदि आभूषण पहने हैं। घुटनों को छूती हुई धोती पर पटका बंधा है। कंधे पर दुपट्टा है, जिसके छोर दोनों ओर लटक रहे हैं। सिर पर लट्टूदार पगड़ी है और उसके ऊपर नाग का फन, पर उससे मूर्ति में किसी प्रकार की भयावहता नहीं आई है। शुंगों के शासन काल में स्त्री-पुरुषों की वेशभूषा क्या थी, इसका पता भरहुत के शिल्प से ही लगता है। पुरुष धोती पहनते थे। उसपर कमरबन्द बंधा रहता था, जिसके दोनों छोर नीचे लटकते रहते थे। शरीर के ऊपरी भाग पर केवल दुपट्टा रहता था। पुरुष अपने बालों को लट्टू जैसा गोल बांध कर, उसके ऊपर पगड़ी बांधा करते थे। पगड़ियों में झालर लटकती रहती थी। कभी लोग कामदार साफा भी बांधते थे।

स्त्रियाँ भी पुरुषों जैसी ही धोती बांधतीं थीं। वह दोनों घुटनों के नीचे तक रहती थी। कमर से ऊपर के हिस्से पर वे कुर्ती आदि नहीं पहनतीं थीं, हाँ, उनके सिर पर ओढ़नी अवश्य रहती थी। वे गहनों की बड़ी शौकीन थीं। कमर में कई लड़ की भारी करधनी, हाथ पैरों में कड़े और छड़े तथा गले में तौक पहने रहतीं थीं।

मृग जातक

भरहुत में बुद्ध-पूजा के दृश्य हैं, कुछ जातक—कथायें हैं, कुछ में राजा प्रसेनजित आदि हैं और कुछ में नाग, यक्ष आदि देवता हैं। इस प्रारम्भिक बौद्ध कला में बुद्ध की पूजा तो की गई है पर उनको आंका नहीं गया। कहीं उनके स्थान पर बोधिवृक्ष की उपासना की गई है, जिसके नीचे उनको बुद्धत्व मिला था। मनुष्य और पशु सभी बड़ी तन्मयता से बुद्ध-पूजा करते दिखाई देते हैं। इनमें हाथियों द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा का एक बहुत सफल अंकन हैं। कहीं स्तूप की ही पूजा होती दिखाई गई है।

एक अर्ध-चित्र में बुद्ध-माता मायादेवी अपने राजभवन में लेटीं हैं।

रात का समय है। दीपक जल रहा है। उनकी दो दासियाँ पलंग के पास ही बैठीं हुई ऊंघ रहीं हैं। सिरहाने कोई देवता हाथ जोड़े खड़ा है। एक अत्यंत सुन्दर हाथी तेजी से दौड़ता हुआ माया देवी की ओर आ रहा है। यह एक सपना है जो बुद्ध की माता ने उनके जन्म से पहले देखा था। बोधिसत्व ने श्वेत वर्ण के अत्यंत सुंदर हाथी के रूप में, जिसकी सूंड में सफ़ेद कमल था, माता माया के कुक्षि में प्रवेश किया, यह उन्हें स्वप्न में दिखाई दिया।

भरहुत में आंकी गई जेतवन के दान की कथा तो बड़ी ही अनूठी है—कोशल की राजधानी श्रावस्ती के सेठ का नाम सुदत्त था पर सब लोग उन्हें अनाथ पिंडक कहते थे क्योंकि उनके द्वार से कोई खाली हाथ वापस न लौटता था। वे अनाथों के भी प्रतिपालक थे। अनाथ पिंडक एक बार राजगृह गये। वहाँ उन्होंने भगवान के दर्शन कर उनसे प्रार्थना की कि वे राजगृह पधारें। भगवान ने इसे सहज भाव से स्वीकार कर लिया। अनाथ पिंडक के आनन्द और उत्साह का पारावार न रहा। उन्होंने लाखों मुद्रायें खर्च करके रास्ते में जगह-जगह विहार बनवा दिये। उन्होंने सोचा कि भगवान आवेंगे तो सही पर वे प्रवचन कहाँ देंगे? ठहरेंगे कहाँ? इसके लिए कोई ऐसी जगह चाहिए जो न नगर से बहुत दूर हो और न बहुत पास। उनकी दृष्टि राजकुमार जेत की बारी पर गई—'भला इससे सुन्दर स्थान और कहाँ मिलेगा?' नगर सेठ राजकुमार के पास गये और उनकी बारी खरीदने की बात चलाई। जेत को मन ही मन बहुत बुरा लगा, इसलिये नहीं कि वे बुद्ध के लिए अपना स्थान नहीं देना चाहते थे। उन्हें सेठ के दुस्साहस पर आश्चर्य हो रहा था। वह उनकी भूमि खरीदने की बात चलाने आया है? उन्होंने तैश में कहा, 'हाँ, मैं बेच दूंगा।' अनाथ पिंडक ने पूछा, "पर मूल्य क्या होगा?" राजकुमार हंसे, 'जितनी स्वर्ण-मुद्रायें उस भूमि को ढंक लें।' उन्हें न भूमि बेचनी थी न कोई सौदा करना था। पर अनाथ पिंडक की श्रद्धा की धारा तो दोनों कगारों को छूती, उमड़ रही थी। उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। अब राजकुमार जेत बड़े असमंजस में पड़ गये। उन्होंने सोचा, 'मैं भूमिपुत्र हूँ। कहीं कोई अपनी मां को भी बेचता है?' उन्होंने धरती बेचना अस्वीकार कर दिया। मामला न्यायाधीश के पास गया। फ़ैसला अनाथ पिंडक के पक्ष में हुआ क्योंकि उन्होंने राजकुमार का मुंहमांगा मोल देना स्वीकार कर लिया था। खज़ाने की

थैलियों के मुंह खुल गये। ज़मीन मुहरों से की जाने लगी। जेत अनाथ पिंडक की श्रद्धा देखकर दंग थे। जब थोड़ी सी भूमि रह गई तब राजकुमार जेत चिल्लाकर बोले, 'बस करो, बस करो।' अब अनाथ पिंडक के दंग होने की बारी थी। वे जेत के चेहरे की ओर देखने लगे। जेत बोले, 'नगर श्रेष्ठी ! तुम्हें पाकर हमारी नगरी धन्य हो गई है। मैं यह सब मुद्रायें नहीं लूंगा। भूमि तुम्हारी हो

हाथी के सवार

चुकी।' अनाथ पिंडक बोले, 'भला यह कैसे हो सकता है ?' जेत कुछ सोचते रहे फिर बोले, 'अच्छा भूमि तुम्हारी पर भवन हमारा। इस धन को मैं अब गृहण नहीं करूंगा। यह तुम इस भूमि पर विहार बनवाने में लगा दो। कहो, यह तो अस्वीकार नहीं है ?' जो वादी प्रतिवादी बनकर न्यायालय में गये थे वे आँखों में आनन्दाश्रु भरे एक दूसरे की ओर देख रहे थे। यही बुद्ध की विजय थी।

सत्येन्द्र ! इन दोनों में किसका त्याग बड़ा है, यह मैं नहीं जानता पर स्वार्पण की इन्हीं गाथाओं से हमारा देश धन्य हुआ है। इन्हीं की आधार-शिला पर हमारा पुरातन राष्ट्र हिम-गिरि सा अचल खड़ा है।

भरहुत के अर्ध-चित्र में अनाथ पिंडक हाथ में गड़ुआ लिए खड़े हैं। गाड़ी से मुहरें उतार कर ज़मीन पर बिछाई जा रही हैं। पास ही राजकुमार जेत खड़े हैं। भरहुत के शिल्प में लगभग तीस जातक आंके गये हैं। इनमें उस युग का लोक जीवन बोल उठा है इसीलिए यहाँ के शिल्प में इतनी सजीवता है। इस कला को अपने सच्चे अर्थों में 'लोक-कला' की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें हंसती, खेलती ज़िन्दगी उतरी है। इसपर आध्यात्मिकता का वह रंग नहीं है जो एलोरा या एलीफैन्टा के शिल्प में दिखाई देता है। इसमें ऐसे मज़ेदार दृश्य भी हैं जिनमें कहीं बन्दर हाथी पर चढ़े ढोल बजाते चले जा रहे हैं, कहीं वे राक्षस का दांत उखाड़ रहे हैं। उसके दांत में एक रस्सा बांध दिया है, जिसे हाथी खींच रहा है। कहीं वे रास्ते पर जाने वाले ग्वालों की हांड़ी का दही टटोल रहे हैं। हाथी व हिरण आदि के विविध चित्रण से तो यह शिल्प भरा पड़ा है। हाथियों के मुँह से कमलों की बेलें निकल रही हैं। कुछ पशु काल्पनिक भी हैं। तोरण पर अंकित एक सिंह का मुंह आदमी जैसा है।

भरहुत में स जातक, किन्नर जातक, व छदंत आदि अनेक जातक प्रस्तरांकित हुए हैं। एक जातक में एक हिरन एक तालाब के किनारे रहता है। उसे एक दिन एक शिकारी अपने जाल में फंसा लेता है। जब वह घर चला जाता है तो हिरन का मित्र पक्षी उसके घर जाता है और घर से चलते समय बार बार पंख फड़फड़ा कर उसका अपशकुन करता है। तबतक कछुआ, जो हिरन का मित्र था, इस जाल को काट डालता है।

भरहुत के अर्ध-चित्र में कछुआ जाल काटकर मृग का पैर निकाल रहा है। दो-तीन घटनाओं का एक चित्र में ही प्रदर्शन कर दिया गया है। तालाब छोटा सा है। उसमें मछलियाँ तैर रहीं हैं। भरहुत भंडार है कहाँ तक लिखूं ? मुझे भरहुत के शिल्प में कमल के उभरे फूल बहुत पसन्द हैं। कहीं कमल की खिली पंखुड़ियों के भीतर राजा रानियों की मूर्तियाँ उभरी हैं कहीं कमल मुंह में दबाये हाथी दौड़ रहे हैं। कमल का विविध प्रकार का अंकन शिल्पियों की प्रतिभा का परिचय देता है।

शेष फिर। सब को यथायोग्य। तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है, लिखना ?

तुम्हारा
जगदीश दादा

सांची

भोपाल,
२२-११-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

भरहुत के शिल्प को देखकर भारतीय कला को निकट से जानने की इच्छा बरसात की नदी की भांति बढ़ती चली गई। रात में दैनिक की सह-सम्पादकी और दिन में फ़ुरसत। मैं नेशनल लाइब्रेरी के अध्ययन कक्ष में जाकर बैठने लगा। वहीं मैंने कला के विशाल ग्रंथों के दर्शन किये। उस समय ऐसा लगता कि मैं किसी और ही लोक में घूम रहा हूँ। भारत के स्वार्णिम अतीत की महान संस्कृति आंखों के आगे नाचने लगती। ज्यों ज्यों मैं उन ग्रंथों को देखता मेरी कला-मंदिरों के दर्शन करने की लालसा बढ़ती जाती, जब वह बहुत बलवती हो उठी तो एक महीने की छुट्टी की अर्ज़ी देकर कला-यात्रा करने, अपने तीर्थों को देखने चल पड़ा हूँ। नागपुर में मौसाजी हैं। उनसे मिले एक अर्सा हो गया। सोचा कि उनसे मुलाकात हो जायगी और वहाँ से भोपाल जाकर सांची भी देख लूंगा। कल सबेरे यहाँ आ गया। सांची यहाँ से पास का ही स्टेशन है। कल ही वहाँ चला गया। रातभर वहीं रहा। आज का दिन भी वहीं बिताकर अभी लौटा हूँ। स्मृति ताज़ी है, सोच रहा हूँ अभी तुम्हें पत्र लिख दूं।

सांची में छोटे बड़े तीन स्तूप हैं। जो सबसे बड़ा है, वह अपने तोरणों की कला के लिए संसार प्रसिद्ध है। यह तोरण चार हैं और चारों दिशाओं की ओर हैं, बीच में स्तूप है। इन तोरणों में से हर एक की ऊँचाई चौंतीस फ़ीट है। इन में नीचे चौपहला खम्भे हैं। इन पर भी शिल्प कृतियाँ बनाई गई हैं। इस

स्तूप को बनवाने का श्रेय शुंगों को है और तोरणों का सातवाहन राजाओं को, इस प्रकार सांची का यह शिल्प ईसा से लगभग सौ साल पुरानी कला-कृति है।

भगवान बुद्ध के जीवन सम्बन्धी अर्ध-चित्रों में उनके गृह-त्याग का चित्र बड़ी कुशलता से आंका गया है। छंदक घोड़े को लिए जा रहा है। उस पर छत्र तना है। बुद्ध की आकृति सांची के शिल्प तक दिखाई नहीं देती। घोड़ें के पैरों को यक्ष गण अपने हाथों पर उठाये हैं ताकि कोई शब्द न होने पावे। फिर बुद्ध के चरणों की पूजा करता हुआ छंदक दिखाई देता है। इस के नीचे के दृश्य में वह खाली घोड़े को लिए हुए लौट रहा है। वह बहुत दुःखी जान पड़ता है।

पूर्वीय तोरण पर सम्राट अशोक की बोधिवृक्ष उपासना का दृश्य आंका गया है। उनके साथ अनेक व्यक्ति हैं। बोधिवृक्ष के निकट एक स्त्री और पुरुष उसकी पूजा कर रहे हैं। अशोक हाथी से उतर पड़े हैं। हाथी बिठा दिया गया है। सम्राट कमर पर हाथ रक्खे खड़े हैं। उनके उंगली पकड़े हुए राजपुत्र खड़ा है। निकट ही खड़ी राज महिषी उनसे कुछ कह रही हैं। सम्राट के साथ अनेक सैनिक हैं और राज अमात्य भी, जो हाथियों और घोड़ों पर चढ़े हैं।

बुद्ध-पूजा के अनेक दृश्य हैं किन्तु उन सब में स्वयं बुद्ध की प्रतिमा नहीं है। एक जगह वन के समस्त प्राणी बोधिवृक्ष की उपासना करने आ जुड़े हैं। कहीं हिरनों की टोली चक्र की पूजा करने आई है। कलाकारों ने पशुओं की मुद्राओं में श्रद्धा का जो रंग भरा है, वह दर्शक को भी अपने रंग में रंग देता है। भरहुत की भांति ही सांची की कला में भी तत्कालीन लोक-जीवन झलकता है। सच तो यह है कि धार्मिक तत्व की अपेक्षा उसमें तत्कालीन समाज का चित्रण ही अधिक है। पुरुषों के चेहरों पर मस्ती का रंग है और स्त्रियों पर अल्हड़ता का। वे गहनों से लदीं दिखाई देती हैं। सांची की कला का पट; नृत्य, गान, प्रेम, युद्ध, गांव और नगरों के दृश्य, गलियों में रथों पर निकलते हुए राजा गण-आदि के ताने-बाने से ही बुना गया है। दक्षिण तोरण के पिछली ओर युद्ध का दृश्य है। भगवान बुद्ध की अस्थियाँ लेने के लिये किसी राजा की चतुरंगिनी सेना ने नगर पर आक्रमण कर दिया है। नगर के मकान दो-तीन मंज़िल के हैं। उनके चारों ओर गहरी खाई खुदी है, जिसमें कमल खिल रहे हैं। युद्ध का

वातावरण आंकते समय भी सांची के कलाकार अपने प्रिय कमल को नहीं भूल सके हैं। उसी में खड़े होकर सैनिक नागरिकों पर वाणों की वर्षा कर रहे हैं। नगर के भयभीत लोग खिड़कियों में से झांक रहे हैं। कुछ छतों पर नागरिक भी तरकस ताने खड़े हैं। सैनिकों की कमर में पट्टा बंधा है। घरों की दीवारें गोल डाट की हैं। कुछ चौरस भी हैं। उनमें खिड़कियाँ हैं और रोशनदान भी।

सांची के मयूर

ऊपर छज्जे हैं। उत्तर तोरण के चौपहल खम्भे पर राजा प्रसेनजित की नगर परिक्रमा का दृश्य है। वे अपने मंत्री के साथ घोड़े पर जा रहे हैं। आगे सेवक हैं। इसमें नगर के तीन-चार मंजिल के मकान भी दिखाई देते हैं। उत्तर तोरण में ही वैसन्तर जातक का दृश्य है। इसमें लोग हाथियों का जुलूस देख रहे हैं।

वैसन्तर जातक के उत्तर तोरण वाले दृश्य से हमें उस युग के गांव की एक झलक भी मिलती है। राजा अपने पुत्र की उंगली पकड़े पैदल जा रहे हैं। साथ-साथ रानी हैं। रानी की गोद में उनकी पुत्री है। रास्ते में खड़े गांव वाले हाथ जोड़ कर उनका अभिवादन कर रहे हैं। ग्रामीणों के वस्त्र और पगड़ियाँ सादा हैं। उनपर कलाबत्तू का काम नहीं है। किसान हल लिये अपने खेतों की

ओर जा रहे हैं। उनकी स्त्रियाँ अपने बच्चों को लिये, झोंपड़ियों के सामने बैठी हैं। एक स्त्री का बच्चा मचल कर कहीं जा रहा है, वह उसे रोक रही है।

सांची के इन अर्ध-चित्रों में ऐसे भी कई दृश्य हैं जिनमें लोग नाचते गाते दिखाई देते हैं। बौद्ध शिल्प में नृत्य को लोक-जीवन का एक अंग समझ कर ही आंका गया है। भारत नृत्यकला से बहुत दिनों से परिचित है। अब से लगभग छः हजार साल पहले के सिन्धु-संस्कृति के जो अवशेष मोहेंजोदारो में पाये गये, उनमें एक हाथ कमर पर रक्खे नृत्य करती हुई स्त्री भी मिली है। भरहुत के एक दृश्य में भी नृत्य करती हुई अप्सरायें हैं। वे एक हाथ कान के पास रखकर अलाप ले रही हैं। उनके बीच में एक बालक है, वह भी नाच रहा है। नर्तकियों के निकट ही कुछ स्त्रियां मंजीर बजा रही हैं। कुछ नृत्य कर रही हैं।

सांची में 'नागनियों के नृत्य और गान का दृश्य' शिल्पी की बड़ी सफल कृति है। बोधिवृक्ष के नीचे नागराज बैठे हैं। उनकी पगड़ी के उपर सर्प के पांच फन हैं। गले में पंचलड़ी माला और कानों में कुंडल हैं। उनके निकट उनकी तीन रानियाँ चौकी पर बैठी हुई हैं। उनके हाथों में प्याले हैं और हाथों में गोल लड्डू जैसी कोई मिठाई है। जान पड़ता है कि वे खा-पी रही हैं। बातचीत भी करती जा रही हैं। वे सिर पर दुपट्टा ओढ़े हैं। गर्दन में मोतियों की मालायें हैं और पैरों में घुटनों तक के कड़े हैं। नाग रानियों के पीछे एक नागिनी चंवर लिये खड़ी है। दूसरी नागिनी जो उसके पास ही खड़ी है, ढप बजा रही है। राजा के दूसरी ओर दो स्त्रियाँ मृदंग और ढोल बजा रही हैं। एक के हाथ में तारोंदार बाजा है और दूसरी बांसुरी के स्वर फूंक रही है। उनके सिर पर सर्प-फन है, जो उनका प्रतीक है। सम्पूर्ण दृश्य को देखने से जान पड़ता है कि नृत्य करने वाली और वाद्य बजाने वाली नागनियाँ अपने आपको भूल सा गई हैं। रानियों का ध्यान इस ओर नहीं है। वे आपस में गप्प मारती हुई खा-पी रही हैं। राजा बड़े प्रसन्न जान पड़ते हैं। शिल्प में नृत्य की जिन भंगिमाओं का समावेश आवश्यक है, वे सब स अर्ध-चित्र में हैं।

भरहुत से सांची की कला अधिक विकसित है। उसकी वेदिकाओं और तोरणों पर अंकोरी गई अथवा यों कहें कि उभरी हुई मूर्तियाँ अधिक सौष्ठवमयी

यक्ष — सांची के युग की वेश-भूषा

और सजीव हैं। सांची में कुशीनगर के मल्ल स्तूप के आगे मृदंग ढोलक आदि लिये, गायन-वादन करते दिखाई देते हैं।

सत्येन्द्र! पशुओं को आंकने में सांची के शिल्पी ने जो कला दिखाई है, वह लिखने की नहीं, देखने की ही चीज़ है। उसे हाथी विशेष प्रिय है। दक्षिण तोरण के सामने के भाग में एक अर्ध-चित्र है जिसमें हाथी कमलों से भरे सरोवर में घुसा है। उसकी सूंड में भी कमल-नाल है। उस पर एक राजपुरुष चढ़ा है। उसके हाथ में अंकुश है। उसके पीछे उसकी रानी है। वह अपनी सहेली को हाथी के ऊपर चढ़ आने के लिये हाथ से सहारा दे रही है। सहेली भी एक पैर ऊँचा करके चढ़ने की चेष्टा कर रही है। हाथी कमलों को तोड़ने में ही व्यस्त है। पार्श्वभूमि में किसी राज-भवन की खिड़की दिखाई दे रही है, जिसमें दो स्त्रियाँ बैठी जल-क्रीडा देख रही हैं। हौदा से सजे हुये हाथी तो बहुत दिखाई देते हैं, जिनकी पीठ

पर घंटे लटकते हैं। पूर्वीय तोरण पर हाथी बड़े गुस्से के साथ एक पेड़ को झकझोर रहा है। उसके पीछे हथिनी खड़ी है और पीछे शिकारी। लो, हाथी और शिकारी की बात लिखते ही छदंत जातक याद आ गया। यह भरहुत व सांची दोनों में आंका गया है। इतना प्रिय है बौद्ध कलाकारों को यह जातक?

हिमालय की तराई में हाथियों का एक राजा रहता था। उसके छः दांत थे इसीलिये उसे छदंत कहते थे। वह सब हाथियों में ऐसे चमकता था जैसे तारों में चन्द्रमा। उसके दो रानियाँ थीं। उनमें बड़ी रानी सीधी थी और छोटी रोज कुढ़ कर बैठ जाने वाली। कुढ़-कुढ़ कर रही वह मर गई। उसने एक राजा के यहाँ जन्म लिया और बड़ी होने पर काशी के राजा की पटरानी बनी। उसको अपने पूर्व जन्म की घटना स्मरण थी। उसने राजा से कहा कि मुझे छदंत के दांत चाहिए। राजा ने तुरंत ही अहेरी सोनत्तर को इस काम के लिये भेजा। वह छिपकर, साधु का वेश बनाकर हाथियों के गिरोह में गया। छदंत ने सब कुछ समझ लिया। उसे घोर क्लेश हुआ। उसने सोनत्तर को बुलाकर अपने दांत उखाड़ कर दे दिये। उगके खून बह रहा था। बहुत पीड़ा हो रही थी। जब दर्द अधिक बढ़ गया तो छदंत मर गया। सोनत्तर ने भी ज्योंही रानी को छदंत के दांत लाकर दिये, वह भी मूर्छित होकर गिर पड़ी और मर गई। भरहुत में सोनत्तर छदंत का दांत लिए जा रहा है और सांची में वह एक वृक्ष के पीछे छिपा खड़ा है। छदंत को मारने के लिये अवसर की खोज में है। इसी अर्ध-चित्र में एक कोने पर छदंत खड़े हैं। नीचे कमलों का सरोवर है। उनके ऊपर एक हाथी चंवर लिये खड़ा है और दूसरा अपनी सूंड में चौरी लिये है। आगे वे अपनी रानियाँ के साथ जाते हुए दिखाई देते हैं। वे चलते जा रहे हैं। एक हाथी उनपर चंवर डुलाता जा रहा है, दूसरा छतरी लिये है। फिर उनको स्नान कराया जाता है। एक हाथी सूंड में जल-पात्र लिए उनके सामने खड़ा है। पीछे फूल और फलों से लदे वृक्ष हैं। वृक्ष के पीछे गोलाकार में सोनत्तर अहेरी धनुष ताने हुए दिखाई देता है। एक ही विशाल मूर्ति-पट में कई दृश्यों को आंकने की यह शैली भरहुत के शिल्प से ही दिखाई देती है। कुछ जातक भी दोनों में समान रूप से अंकित किये गये हैं। इनमें महाकपि जातक भी है। एक बार बोधिसत्व बन्दरों के राजा बनकर हिमालय की तराई में उत्पन्न हुये थे। उन्होंने अपने गुणों के द्वारा

गज लक्ष्मी, सांची

उस राजा का मन मुग्ध कर लिया था, जो आम के फलों के लिए बन में आया था और उनके हाथियों को मारना चाहता था। बोधिसत्व ने उसे धर्म का उपदेश दिया और अपने साथियों के जीवन की रक्षा भी की। भरहुत में वे वृक्ष के नीचे एक मूढ़े पर बैठे, राजा को उपदेश देते दिखाई देते हैं। सांची में महाकपि के एक ही अर्ध-चित्र में कई दृश्य हैं। बीच में नदी की धारा दिखाई देती है, जिसमें जल की लहरियाँ उठ रही हैं। जल में मछलियाँ तैर रही हैं। एक ओर राजा घोड़े पर खड़ा है। उसके पास वादक और सैनिक खड़े हैं। ऊपर वट वृक्ष के नीचे बानर रूप में बोधिसत्व राजा को धर्म का तत्व समझा रहे हैं।

सांची और भरहुत में कमल-दल पर बैठी गज-लक्ष्मी पर जल के भरे कुंभ उड़ेलते हुए हाथी दिखाये गये हैं। भरहुत के स्तूप की वेदिका पर गज-लक्ष्मी की प्रतिमा आंकी गई है। एक गोलाकार में, जल कुंभ में से तीन खिले हुये कमल निकले हैं। इनमें से बीच के पुष्प पर लक्ष्मी बैठी हैं और दोनों ओर के दो कमल दलों पर दो हाथी पैर सिकोड़े खड़े हैं। वे श्री का जलाभिषेक कर रहे हैं। वेदिका यानी कटघरे के उसी के जुड़े स्तम्भ पर ध्वज लिये अश्वारोही हैं और दूसरे पर कुछ उपासक स्तूप और बोधिवृक्ष की पूजा कर रहे हैं।

सांची के तोरणों पर भी गज-लक्ष्मी की नौ-दस आकृतियाँ हैं। कहीं वे जल-कलश में से निकलने वाले पद्म पर बैठी हैं और कहीं उनका पद्मासन ही जल-कुंभ की आकृति का है। प्रत्येक शिल्प-कृति अपने ढंग की अनूठी है। उसमें शिल्पी की अपनी सौन्दर्य-दृष्टि के अनुरूप रूप-सृष्टि हुई है।

दक्षिण तोरण पर एक पुष्करिणी का दृश्य है, उसमें कमलों के खिले फूल, कलिकायें और पत्ते आदि हैं। उनके बीच में हंस हैं। सरोवर के बीच में कमल के एक खिले हुये फूल पर श्री देवी खड़ी हैं। उनके पैरों में कड़े और छड़े हैं। कमर में मेखला है। धोती घुटनों से नीची है। शरीर के ऊपरी भाग पर वस्त्र नहीं हैं। गले में माला है और सिर पर पगड़ी। श्री के दोनों ओर दो कमलों पर हाथी खड़े हैं, जो अपने अगले घुटने टेके हैं। उन पर झूलें पड़ी हुई हैं।

इसी दक्षिण तोरण पर श्री का वह स्वरूप भी आंका गया है, जिसे पद्मा-श्री कहते हैं। श्री एक प्रफुल्लित पद्म के पराग कोष पर पालती मारे बैठी हैं। कमल

के फूल की आकृति जल-कुंभ जैसी है। पंखे के आकार के कमल-पत्रा, दो अधखिली कलिकाओं और गुलाब की तरह खिले हुये फूलों की छटा देखने ही योग्य है। पद्मा की कमर में उमठी हुई करधनी है और सिर पर दुपट्टा है। गले में माला है। कानों में चौकोर कुंडल हैं। कहीं वे कमल दल पर पैर रक्खे बैठी हुई दिखाई देती हैं।

सांची में अश्वों, बारहसिंघों व बैलों पर सवार दिखाई देते हैं। दो पशु बैठे हैं। इनके मुँह एक दूसरे की अलग-अलग दिशा में हैं। एक के अगले भाग ने दूसरे के पिछले भाग को ढंक लिया है। सांची में खुले रथ भी दिखाई देते हैं। इनमें दो अथवा चार घोड़े जुते रहते थे। उनमें केवल दो ही आदमियों के बैठने का स्थान रहता था। सम्भवतः यह युद्ध में जाने वाले रथ थे जिस में खड़े होकर योद्धा शत्रु सेना पर वाण बरसा सकता था। दक्षिण द्वार पर गाड़ी भी दिखाई देती है, जिस में बैल जुते हैं। बैल तेज़ी से बढ़ रहे हैं। आगे-आगे कुत्ता चल रहा है।

मुझे सांची के मोर बहुत प्यारे हैं। पीछे फूलों से लदे वृक्ष, आगे पंख समेटे मयूर और मयूरी। यों तो सांची में सब कुछ अनूठा है। आभूषणों से सजे-धजे यक्ष; मोटे पेट वाले बौने, जिन्हें देखते ही हंसी आती है। सांची की कला जन-साधारण के जीवन को छूनेवाली कला है।

जिस पहाड़ी पर यह बड़ा स्तूप है उसी पर दो छोटे स्तूप और एक गुप्त कालीन मंदिर है किन्तु कला की दृष्टि से वे विशेष महत्वपूर्ण नही हैं। सांची के अजायब घर में टूटी हुई मूर्तियाँ रक्खी हैं।

मैं कल नागपुर चला जाऊँगा। वहां दो एक दिन ठहर कर अजंता जाने का विचार है।

सबको यथा योग्य।

तुम्हारा
जगदीश दादा

अजंता

रेस्ट हाउस,
अजंता
२८–११–५०

प्रिय सत्येन्द्र,

दो-तीन दिन नागपुर ठहर कर मैं रात को बम्बई एक्सप्रेस से चल दिया। भीड़ काफ़ी थी फिर भी जगह मिल गई। जो लोग डिब्बे के दरवाज़े के पास खड़े होकर भीतर आने वालों को रोक रहे थे उन्हींने बैठने को भी जगह दे दी। मानव स्वभाव कितना विचित्र है? कई दिन की थकान थी, मैं बैठे-बैठे ही ऊँघ गया। जब आँख खुली तो पाँच बज रहे थे। पौ फटने लगी थी। गाड़ी भुसावल के जंक्शन पर आकर खड़ी हो गई थी। मेरे सहयात्रियों ने मुझे बताया कि जलगांव, जहाँ हमें उतरना है, अब केवल दो ही स्टेशन रह गया है। नागपुर से लगभग दो सौ साठ मील की यात्रा समाप्त कर मैं जलगांव उतर पड़ा। जलगांव एक छोटा सा शहर है। केले और संतरे बेहद सस्ते हैं। जलगांव में हमें बस मिल गई। लाल रंग की भूमि और उस पर संतरों के हरे-भरे बाग़ बड़े मनोरम लग रहे थे पर मेरी आँखों में तो अजंता की छबि झूल रही थी। अजंता; जिसे देखने का सपना मैं बरसों से संजो रहा था। बाघोरा नदी आ गई। पाँच मील की दूरी और रह गई। तीस मील मोटर ने तय कर डाले। हमारी उत्सुकता की धारा बांध तोड़ कर बह रही थी। प्रतीक्षा का एक-एक क्षण कठिनता से कट रहा था। आखिर हम लोग रेस्ट हाउस पहुँच गये। यात्री बहुत थे फिर भी एक महाराष्ट्रीय सज्जन की कृपा से सामान रखने भर को स्थान मिल गया। बातचीत छिड़ी तो मालूम हुआ कि वे मेरे हिन्दू विश्वविद्यालय के एक सहपाठी के चाचा लगते थे। हम लोग घुल-मिल गये।

कपड़े बदल कर हम लोग अजंता देखने चल दिए। पहाड़ियों के बीच में लहराती सड़क हमें गुफाओं की ओर ले चली। मन के द्वार खुल गए थे, न जाने कितनी सुनी हुई और पढ़ी हुई घटनायें स्मृतियाँ बन कर उभर रही थीं? अब हम कला-तीर्थ के आगे खड़े थे। पहाड़ की गोद में अजंता की गुफायें बड़ी सुहावनी लगती हैं। अजंता का द्वार मेहराव दार है और बाहर की ओर दीवारों पर भगवान बुद्ध की अनेक प्रतिमायें हैं। पहाड़ को काट-काट कर बड़े-बड़े उन्तीस कमरे बनाये गये हैं। कमरों के सामने लम्बे बरामदे हैं। इसमें से थोड़े से कमरों की दीवालों पर हजारों साल पुरानी तस्वीरें शेष रह गई हैं।

एक मज़े की बात बताऊँ? अब से एक सौ चौंतीस साल पहले तक कोई अजंता का नाम भी न जानता था। भला कैसे जानता? वन में जंगली जानवर दहाड़ा करते थे। शेर तो बाघोरा नदी में पानी पीने आते थे, पर शिकार का शौक़ भी अजीब चीज़ है। आदमी को न जाने कहाँ-कहाँ भटकाता है? एक बार एक अंग्रेज अफ़सर लोमड़ी का पीछा करते-करते इन गुफाओं तक पहुँच गया। वह इन्हें देखकर दंग रह गया। घने जंगल में उसे यह गुफायें जादू के महल सी जान पड़ीं। उसके मन में जिज्ञासा उठी, 'आखिर इस महल में कौन रहता है?' उसने बन्दूक में गोली भर ली। उसे तानकर वह अजंता की गुफाओं में घुसा, पर यह क्या? उसके हाथ की मुठ्ठी ढीली पड़ गई। बन्दूक नीचे झुक गई। वह दीवार पर अंकित, शांति के अवतार बुद्ध की अलौकिक श्री देखने लगा। उसने देखा कि चित्र में एक अत्यंत सुन्दर पुरुष हाथ में कमल लिए खड़ा है। वह किसी चिंतन में है। अंग्रेज की दृष्टि उससे हटना नहीं चाहती थी। वह कमल की पंखुड़ियों जैसे नेत्रों को देख रहा था। चौड़ा वक्ष, लम्बी नासिका, उन्नत माथे पर किरीट, जिसे मानों विश्वभर के सुन्दरतम रत्नों से संजोया गया है। वह बोधिसत्व पद्मपाणि के सामने खड़ा था।

जब ध्यान टूटा तो वह अन्य चित्रों को देखने लगा। उसे वहाँ कुछ सब अलौकिक जान पड़ा। जब वह अपनी छावनी में लौटा तब अपने साथियों से बोला, 'मुझे वह तस्वीरों की दुनियां ऐसी लगी मानो देवता और नृत्य बालायें वहाँ कोई उत्सव मनाने आये हों। नाचते नाचते वे इतने मग्न हो गये हों कि घर लौटने की सुधि ही बिसर गई हो। तब उनके स्वामी ने कहा हो, 'जाओ!

बोधिसत्व पद्मपाणि — अजंता

तुम सब तस्वीर बन जाओ।' बरगद के पीले पत्ते जैसे गर्मियों में अपने-आप ही दूर-दूर जा पहुँचते हैं वैसे ही अजंता की खोज का समाचार भी चारों ओर फैल गया। यह सन् १८२० की बात है।

अजंता ने तुरंत ही देश-विदेश के कला-पारखियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। कला-मर्मज्ञ जेम्स फर्गुसन और वर्जेस ने इस पर अनेक लेख और पुस्तकें लिखीं। उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी पर ज़ोर डाला कि इस कला-निधि की रक्षा का भार अपने ऊपर ले ले। अनेक भित्ति-चित्रों के पर्त उखड़ रहे थे। बहुत सी गुफाओं के चित्र मिट गये थे, केवल कुछ ही गुफाओं के चित्र शेष रह गये थे। फिर भी जितना कुछ बचा था, वही अजंता को विश्वव्यापी कीर्ति देने में समर्थ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कला के इन अधिकारी विद्वानों की बात को सुना-अनसुना नहीं किया। उन्होंने तुरंत ही मेजर गिल को अजंता भेजा। उस समय कोठरियों में धूल भरी थी और मकड़ियों के जाले तने थे। गिल साहब ने इन्हें साफ़ कराया और चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने में लग गये। जो चित्र सैकड़ों वर्ष से चुप थे, वे एक विदेशी को अपना इतिहास सुनाने लगे। मेजर गिल ने उन चित्र-लिपियों को लन्दन भेजा जहाँ वे प्रदर्शनी में रक्खी गईं। दुर्भाग्य से उस प्रदर्शनी में ही आग लग गई और गिल साहब की वर्षों की साधना नष्ट हो गई। इसके बाद अनेक देशी और विदेशी कला-स्वामियों ने अजंता में आकर इन चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने का कार्य किया। जॉन ग्रिफिथ, लेडी हेरिंघम, श्री रविशंकर रावल, श्री मुकुल दे आदि अनेक कलाविदों ने अजंता पर सर्वांग सुन्दर ग्रंथ प्रकाशित कराये। श्री याज़दानी ने हैदराबाद के पुरातत्व विभाग से विशाल ग्रंथ 'अजंता' कई भागों में निकाला। अजंता की शैली ने उन चित्रकारों की कला पर अपना स्पष्ट प्रभाव डाला जो आचार्य श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के नेतृत्व में भारतीय कला का पुनरुद्धार करने उठ रहे थे।

जिस कला का अधखिला रूप हमें भरहुत और सांची की कला में दिखाई देता है वह अजंता में सहस्रदल पद्म सी खिल जाती है। भरहुत व सांची के प्रारंभिक बौद्ध शिल्प में जहाँ बुद्ध की उनके प्रतीकों के रूप में उपासना की जाती है वहाँ अजंता में बुद्ध की प्रतिमायें आंकी जाने लगती हैं, अपनी जीवन-गाथाओं में वे प्रत्यक्ष दर्शन देने लगते हैं।

अजंता के एक विशाल चित्र में भगवान बुद्ध ध्यान लगाये बैठे हैं। मार;

वासनाओं के स्वामी कामदेव की सेना उन पर आक्रमण कर रही है। बुद्धत्व पाने के पहले भी जब राजकुमार सिद्धार्थ एकांत में बैठकर चिंतन किया करते थे, तब मार चुपके से उनके कानों में आकर कहता था, 'राजकुमार, यह फूल सा सुकुमार शरीर क्या इस प्रकार सुखाने के लिये है?' सिद्धार्थ उसकी बात सुनी-अनसुनी कर देते। मार ने जब सिद्धार्थ को बोधिवृक्ष के नीचे तप करते देखा तो कांप उठा। उसने सोचा कि यदि इन्हें आर्य-सत्य मिल गये तो संसार इन्हीं के पथ पर चलने लगेगा। लोगों का जीवन बदल जायगा। फिर पाप कौन करेगा? मेरा शासन कौन मानेगा? उसने सोचा जैसे भी हो इनकी तपस्या भंग करनी होगी। पहले उसने अप्सरायें भेजीं। वे सिद्धार्थ के आगे आकर नाचने लगीं पर उन्होंने उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखा। तब बिजलियाँ कड़कीं। आँधियाँ चलीं। पेड़ उखड़-उखड़ कर गिरने लगे पर सिद्धार्थ के निकट पहुंचते ही आंधी का वेग इतना कम हो जाता कि उनके पीले वस्त्र; चीवर का छोर भी न उड़ता। फिर घोर वर्षा हुई। ऐसा लगने लगा कि आज धरती और आकाश एक होकर रहेंगे, पर गौतम का आसन डिगना तो दूर बोधिवृक्ष का एक पत्ता भी न हिला। तब मार अपनी सेना लेकर चला। उस सेना में अत्यंत भयंकर प्राणी थे किन्तु सिद्धार्थ का शरीर छूने का साहस उनमें से किसी में भी न था। वे दूर से ही उन्हें डराने लगे। जब वे गौतम को तप भ्रष्ट न कर सके तब मार ने आखिरी शस्त्र चलाया; तीखी, चुभनेवाली बात कही। वह बोला,' न तो तुमने संसार के कल्याण का कोई काम किया है, न पुण्य ही किया है, फिर यह ढोंग साधे क्यों बैठे हो? उठो, यह आसन तुम्हारे लिये नहीं, मेरे लिये है।" सिद्धार्थ ने मार से पूछा 'मार, तेरे पुण्य कार्यों का; दान का साक्षी कौन है?' मार ने चिढ़कर कहा,' और तुम्हारा?' तब सिद्धार्थ ने धरती को उंगली से छकर कर कहा,' पृथ्वी! तुम मां हो। मां की दृष्टि में उसके सब पुत्र समान होते हैं। तुम्हीं बताओ क्या यह मार सच कहता है?'

तुरंत ही पृथ्वी में से घोर शब्द निकला, मानों सहस्रों निर्झर एक साथ फूट पड़े हों, "मैं साक्षी हूँ।" इतना सुनते ही मार मूर्छित होकर गिर पड़ा। अजंता के एक विशाल चित्र में मार अपनी सेना सहित बुद्ध पर आक्रमण करने आया है। वह तना खड़ा है। उसकी सेना में तृष्णा है, मोह है, मद है। कुछ अत्यंत कुरूप, महा भयंकर प्राणी हैं। उनकी आंखें अंगारे सी जल रही हैं। वे अपने हाथों में तीखे

शस्त्र लिये बुद्ध को डरा रहे हैं पर वे अपने नेत्र मूंदे, बड़े शांत बैठे हैं। मार की सेना के बीच में गौतम ऐसे जान पड़ते हैं कि गहरे अंधकार में दीपक की लौ जल रही है।

एक भित्ति चित्र में यशोधरा अपने पुत्र राहुल को लिये खड़ी हैं। राहुल-जननी का वेश बहुत सादा है। वे एक धोती पहने हैं। द्वार के बाहर हाथ में भिक्षा का पात्र लिये भगवान बुद्ध खड़े हैं। वे अत्यंत सौम्य और शांत हैं। कंधे पर पीला चीवर पड़ा है। उनकी आकृति यशोधरा और राहुल की अपेक्षा बड़ी आंकी गई है। शायद कलाकार इस प्रकार उनकी महानता या अति मानवत्व प्रकट करना चाहता है। राहुल-माता अपने स्वामी की ओर टकटकी लगाये देख रही हैं। उनके आँखों में से आंसू उमड़ कर निकलना ही चाहते हैं पर जान पड़ता है कि वे उन्हें बरबस रोक रही हैं। राहुल तो भोला बच्चा है, सहमा हुआ सा खड़ा है।

सत्येन्द्र, बता सकते हो फ़ोटो और चित्र में क्या अंतर होता है? फ़ोटो मशीन की चीज़ है, जैसा देखती है, उतार देती है। चित्रकार या शिल्पी की दृष्टि गहरी पैठती है और भीतर की भावनाओं के मोती खोजकर उन्हें चेहरे पर टांक देती है। अजंता के सर्जक को इस कला में कमाल हासिल है। मनुष्य तो मनुष्य, उसने पशुओं के चेहरों पर भी अलग-अलग भाव-मुद्रायें आंक दी हैं। अजंता में गज जातक आंका गया है, जिसकी कथा यह है—एकबार बोधिसत्व एक हाथी के यहाँ उत्पन्न हुये। जब उनके माता-पिता बुढ्ढे हो गये, पिता अंधे हो गये, तब वे उनकी और भी अधिक सेवा करने लगे। उनके लिए चारा ले आते। प्रति क्षण उनका ध्यान रखते। एक दिन राजा ने अहेरियों को आज्ञा दी कि वे उसके लिये किसी हाथी को जंगल से पकड़ लावें। अहेरियों ने बोधिसत्व का रूप देखकर सोचा कि राजा को यही हाथी पसन्द आवेगा। वे उन्हें पकड़कर राजा के पास ले आये। जब राजा को यह पता चला कि यह अपने बूढे अंधे पिता व माता की सेवा करते हैं तो उन्हें बड़े आदर के साथ फिर वन में भिजवा दिया। अजंता के एक भित्ति चित्र में तीन दृश्य हैं। एक दृश्य में राजा के सेवक एक हाथी को घेरे हुये लिये जा रहे हैं। उन्होंने उनकी सूंड में रस्से बांध दिये हैं। एक अहेरी उनके भाला चुभो रहा है। दूसरे दृश्य में हाथी राजा के यहाँ से वापस लौट रहा है। उसके आगे-आगे तीन सेवक चल

रहे हैं। उसके पीछे भी सैनिक और घुड़सवार हैं। हाथी ले जाते समय जितना चिंतित और उदास था, अब उतना ही प्रसन्न जान पड़ता है। तीसरे दृश्य में हाथी अपने माता-पिता के माथे पर फूल-पत्तियाँ चढ़ा रहा है। उसकी मां उसके वियोग में बहुत दुर्बल हो गई हैं।

भगवान बुद्ध की करुणा, मानव समाज तक ही सीमित नहीं रही। उनके पूर्व-रूप बोधिसत्वों में पशु हैं, पक्षी हैं, वृक्ष और सरोवर की आत्मायें हैं। सबने अपनी-अपनी परिस्थिति में दान, शील, क्षमा, शांति आदि दिव्य-गुणों का विकास किया है। सांप में विष होता है। दंशन तो दूर, किसी-किसी सर्प की फुफकार ही मनुष्य के प्राण ले लेती है पर बोधिसत्व नाग बनकर भी रहे हैं। इन कथाओं के सहारे मानों गाथाकार कहना चाहता है 'तुम कोई भी कोई न हो, यदि लोक-कल्याण का अंकुर तुम्हारे मन में उग आया है तो वह एक दिन तुम्हारे व्यक्तित्व को वट वृक्ष जैसा विशाल बना ही देगा।'

सत्येन्द्र, यह कमरे जिनमें तस्वीरें आंकी गई हैं, पहाड़ की चट्टानों को काट कर बनाये गये हैं। शिल्पी इनमें सैकड़ों वर्षों तक छैनियाँ चलाते रहे हैं। यहाँ पर जो शिला लेख मिले हैं, उनसे पता चलता हैं कि यह ईसा के पचास वर्ष पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्यकाल तक यानी आंध्र और वाकाटक राजाओं के शासन काल में बने हैं। कमरों की दीवारों को समतल करने के लिए उनपर एक पलस्तर चढ़ाया जाता था जिसे वज्रलेप कहते थे। यह लेप सूख जाने पर गेरू और वनस्पतियों के रंग से चित्रों की रेखायें खींच दी जाती थीं और फिर उनमें रंग भरे जाते थे।

तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि इन गुफाओं में भीतर अंधकार है। बिना गैस लैम्प के इन चित्रों को देखा भी नहीं जा सकता। भला अंधेरे में यह चित्र कैसे बनाये गये होंगे ?

तुम्हीं सोचो कितना कठिन है, छैनियों से पहाड़ को काट-काट कर उसके भीतर महल बना देना, दीवारों पर ऐसा लेप लगाना जो आज दो हज़ार साल के बाद भी पक्का है, ऐसे रंगों से आंकना जो अब भी मौजूद हैं, एक-एक भावना को इतनी सफलता के साथ पतली और तेज़ दौड़ने वाली रेखाओं में आंक देना जो मन को छू ले।

तुम्हारा
जगदीश दादा

एलोरा

औरंगाबाद,
६-१२-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

आज अजंता से यहाँ आये, एक सप्ताह हो गया। दिन कैसे निकलते जा रहे हैं, पता ही नहीं लगता। औरंगाबाद में भी दो-एक दर्शनीय स्थान हैं। कुछ खोज का कार्य भी चल रहा है। अजंता जैसी ही, भित्ति चित्रों से अलंकृत गुफायें मिल रही हैं। कुछ पहले की भी बौद्ध गुफायें हैं। यहाँ का बीबी का रोज़ा तो ताज की अनुकृति सा ही लगता है। यहाँ के बौद्ध गुहा-मंदिर देखने गया। लोगों ने कहा, 'इनमें कोई विशेषता नहीं है।' फिर भी मुझे दो-एक पाषाण-चित्र बहुत अच्छे लगे। दीवार पर आंका हुआ एक नृत्य दृश्य बहुत सुन्दर है। उसके निकट ही बोधिसत्व की प्रतिमा है। इसमें उनके एक हाथ में माला है और दूसरे में पद्म। सिर पर योगियों जैसी जटायें हैं। सत्येन्द्र! अपने विशाल, महाकाय देश की आत्मा, उसका प्राण; उसका तप है। यह तप ही शिव है, बुद्ध है, तीर्थंकर है। भारत ने सदा इसी को पूजा है। यह तप, साधना चाहता है। अतीव सौन्दर्यशालिनी उमा जल में खड़े होकर पहले तपस्या करती हैं, तब शिव उन्हें वरण करते हैं। राजकुमार सिद्धार्थ यशोधरा को सोता छोड़कर चले जाते हैं। बुद्धत्व प्राप्त कर, वे एक बार फिर लौटते हैं, लेकिन तब, जब देवि यशोधरा की साधना इतनी जग जाती है कि वे लोक-कल्याण के लिए, अपने एकमात्र सहारे राहुल को भी 'संघ' को अर्पित कर देती हैं। इस तप-रूप शिव, बुद्ध और महावीर से ही वासनाओं का स्वामी काम परास्त होता है।

भारत का कलाकार संत-परम्परा का है 'हम चाकर रघुवीर के पटौ लिखौ दरबार।' वह राजाओं की मूर्तियाँ नहीं आंकता, पहाड़ों की ओर चल देता है, ऐसे माध्यम की खोज में, जो कभी नहीं मिटता। उसने अपने अंतर का दीप जलाकर अंधेरी गुफाओं को कैसे आलोकित किया? स्वर्ग की शोभा पृथ्वी पर कैसे उतारी? यह मैं अजंता में देख चुका हूँ। उसने पहाड़ों को काट-काट कर तीन-तीन तल के विशाल मंदिर कैसे बना दिये? यह मैं एलोरा में देखकर आया हूँ। मेरे मन में बार-बार एक ही प्रश्न चक्कर काट रहा है, 'क्या सामान्य मानव ऐसे महत्कार्य कर सकता है?' मानव के मन की श्रद्धा जग जाने से क्या नहीं हो सकता?

एलोरा औरंगाबाद से पन्द्रह-सोलह मील दूर, पूर्व की ओर है। दौलताबाद और खुलदाबाद होती हुई बस जाती है। एलोरा में हमें बौद्ध, ब्राह्मण और जैन तीनों धर्मों के गुहा-मंदिर एक मील से भी अधिक दूरी तक फैले दिखाई देते हैं, मानो किसी विशाल वट-वृक्ष की लम्बी शाखायें हों। भवन-निर्माण और शिल्प की दृष्टि से बौद्ध गुफायें सबसे प्राचीन हैं।

इन गुफाओं में भरहुत व सांची की भांति जातक-कथायें प्रस्तरांकित नहीं हुईं और न यहाँ वृक्ष आदि की पूजा ही होती दिखाई देती है। अजंता में ही बुद्ध की प्रतिमाओं की पूजा दिखाई देती है। जातक-कथाओं से जो विविधता आई थी, वह एलोरा के इस बौद्ध शिल्प में दिखाई नहीं देती। मूर्तियों पर लोक जीवन का जो सहज स्वाभाविक रंग अजंता के भित्तिचित्रों में झलक मारता है, वह धीमा पड़ गया है और बुद्ध प्रतिमाओं के मुख पर गहन चिंतन की छाया दिखाई देने लगी है। पहिली बौद्ध गुफा भिक्षुओं के रहने का विहार है। इसमें कोई प्रतिमा नहीं है। इसमें खम्भा भी नहीं है। बिना खम्भे के समूची छत शताब्दियों से ज्यों की त्यों टिकी है। दूसरी गुफा से प्रतिमायें मिलने लगती हैं, इनमें बुद्ध बैठे अथवा खड़े हुये दिखाई देते हैं। उनके दोनों ओर पद्मपाणि और वज्रपाणि बोधिसत्व हैं, इनमें से एक के हाथ में कमल रहता है और दूसरे के वज्र। बुद्ध-प्रतिमा के ऊपर गन्धर्व पुष्प मालायें डालते दिखाई देते हैं। इन सब बौद्ध गुफाओं में सबसे सुन्दर विश्वकर्मा गुफा है। सभी बौद्ध गुफाओं में यही अकेला चैत्य है, जहाँ भिक्षु-गण बुद्ध-पूजा करने के लिए जुड़ते थे।

शिव-नृत्य, -- एलोरा

यह ८०-८५ फ़ीट लम्बी है। इसमें बुद्ध की ग्यारह फ़ीट लम्बी प्रतिमा है। वे बैठे हैं। उनके ऊपर बोधिवृक्ष छाते की भांति तना है। उसके दोनों ओर गन्धर्व हैं। कमानीदार सी छत पर नाग और नागिनियों की प्रतिमायें हैं।

दो तल और तीन तल दोनों ही तिमंज़िली इमारतें हैं। दो तल का भाग पहले जमीन में दबा हुआ था। इस में भी बुद्ध-प्रतिमायें हैं। तीन तल में एक अत्यंत मनोरम दृश्य है। इसमें बुद्ध सिंहासन पर बैठे हैं। नीचे चक्र है। उसके निकट दो बहुत सुन्दर हिरन बैठे हैं। यह हिरन टूट से गये हैं।

बौद्ध गुफाओं से थोड़ी दूर, ३५-४० गज़ के अंदर से ही ब्राह्मण गुफाओं का सिलसिला शुरु हो जाता है। रावण का खाई, दस अवतार, पहाड़ को काट-काट कर तैयार किया गया कैलाश, रामेश्वर, कुम्हार वाड़ा, सीता की नहानी आदि १५-१६ गुफायें हैं। यह सब गुफायें छठवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक बनाई गई हैं। कैलाश की रचना ७०० ई. से ८०० तक हुई है। चालुक्य राजाओं के बाद जब राष्ट्रकूटों के हाथ में शासन का सूत्र आया तब इस आश्चर्यजनक मंदिर का निर्माण हुआ।

सत्येन्द्र, मैंने तुम्हें पिछले पत्र में लिखा है कि बौद्ध शिल्पियों ने जातक-कथाओं के सहारे राजा से रंक तक सब का जीवन छुआ है। यही शैली हिन्दू कलाकारों को भी पसन्द आई। उन्होंने पुराणों की कथाओं के आधार पर एलोरा में शिल्प-कृतियाँ बनाना प्रारम्भ कर दिया। अंतर केवल यह रहा कि इसमें सामान्य जन कम आंके गये, केवल देवताओं की रौद्र, शांत आदि मुद्राओं की बड़ी प्रभावशालिनी, विशाल प्रतिमायें बनीं।

एलोरा की 'रावण का खाई,' रामेश्वर आदि बड़ी-बड़ी गुफायें प्रतिमाओं से भरी पड़ी हैं। शिव का कैलाश उठता हुआ रावण, चौसर खेलते शिव और पार्वती, दश अवतार आदि शिल्पी के प्रिय विषय हैं। एक गुफा में तो विष्णु के नरसिंह, वाराह आदि अवतारों की ही विशाल मूर्तियाँ हैं। इस गुफा का नाम ही दशावतार है। इसमें शिव का रौद्र-रूप भी आंका गया है। इसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। गले में मुंडों की माला डाले हुये शिव अंधकासुर का संहार कर रहे हैं। पास ही काली हैं। यह अपनी भुजायें उठाये, सिर के केश बिखराये हैं। उनका मुंह बहुत विकराल है। वे हाथ में खप्पर लिये हैं। सिर पर उलूक है, जो वातावरण को और भी भयंकर बना रहा है। बीच में और भी कई छोटी-बड़ी

गुफायें हैं, इनके बाद झरने से छोटी दूर पर ही सीता की नहानी गुफा मिलती है। यह एलोरा के सर्वश्रेष्ठ गुहा-मंदिरों में से एक है। यह लगभग डेढ़ सौ फ़ीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इसमें मंदिर है और दीवारों पर अनेक मूर्तियाँ भी हैं। इसमें पर्वत उठाता रावण और चौसर खेलते शिव हैं। जान पड़ता है उस युग के लोगों में यह खेल अत्यधिक प्रचलित था। एक ओर हंसवाहना सरस्वती हैं। बरामदे में महायोगी शिव ध्यान लगाये बैठे हैं और कहीं मकर के ऊपर गंगा खड़ी हैं। पास ही उनकी एक उपासिका है। सत्येन्द्र, तुमने देखा होगा कि किसी बड़े मकान, दरवाज़े या विशाल प्रतिमा का फ़ोटो लेते समय अक्सर उसके पास एक आदमी खड़ा कर दिया जाता है, जिससे कि भवन या मूर्ति की ऊँचाई-निचाई का एक अन्दाज़ हो जाय। प्राचीन शिल्पी, देवता की महानता और मनुष्य की लघुता दिखाने के लिए ही उसने पास छोटे आकार में उपासक दिखाते थे।

बीच का कैलाश का मंदिर, संसार की उन अनुपम कृतियों में से एक है जिस पर हमारा देश गर्व करता है। इसमें शिल्पियों की साधना को देखकर आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है। उन्होंने बिना ईंट, चूने और चिनाई के, केवल छैनियों से ही काट-काट कर इतने विशाल मंदिर की रचना कर दी गई है। कैलाश में पत्थर को ही काट-काट कर बनाये गये, पतले-पतले छज्जे तैयार करते समय, शिल्पी अपने प्राणों पर खेला होगा, पर क्या मजाल कि एक छैनी भी ज्यादह चल जाय? कैलाश की विशालता का अन्दाज़ इसी से लगाया जा सकता है कि उसका प्रांगण ही लगभग पौने तीन सौ फ़ीट का है। कैलाश के खम्भे अनूठे हैं। इनमें तरह-तरह के अलंकरण हैं।

कैलाश प्रतिमाओं का तो लोक ही है। पृथ्वी का उद्धार करते वाराह, हिरण्य कश्यप का वक्ष विदीर्ण करते नरसिंह, बलि के सिर पर पैर रखकर ब्रह्मांड मापते त्रिविक्रम विष्णु व भगवान शिव की विविध लीलाओं से कैलाश भरा पड़ा है। कैलाश की गज-लक्ष्मी की प्रतिमा बहुत सुन्दर है। एलोरा की प्रतिमायें भारतीय शिल्प की सबसे सुन्दर कृतियां समझी जाती हैं; फिर यह तो मूर्तिमान सौन्दर्य तत्व है। श्री देवी कमलों से भरे एक सरोवर के तट पर पद्मासन पर बैठी हैं। उनके दोनों ओर हाथियों के दो बच्चे अपनी सूड़ों में घड़े दबाये, तिरछे खड़े हैं। ऊपर दो बड़े हाथी उनका अभिषेक कर रहे हैं। श्री देवी पर छत्र तना

गुफायें हैं, इनके बाद झरने से छोटी दूर पर ही सीता की नहानी गुफा मिलती है। यह एलोरा के सर्वश्रेष्ठ गुहा-मंदिरों में से एक है। यह लगभग डेढ़ सौ फ़ीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इसमें मंदिर है और दीवारों पर अनेक मूर्तियाँ भी हैं। इसमें पर्वत उठाता रावण और चौसर खेलते शिव हैं। जान पड़ता है उस युग के लोगों में यह खेल अत्यधिक प्रचलित था। एक ओर हंसवाहना सरस्वती हैं। बरामदे में महायोगी शिव ध्यान लगाये बैठे हैं और कहीं मकर के ऊपर गंगा खड़ी हैं। पास ही उनकी एक उपासिका है। सत्येन्द्र, तुमने देखा होगा कि किसी बड़े मकान, दरवाज़े या विशाल प्रतिमा का फ़ोटो लेते समय अक्सर उसके पास एक आदमी खड़ा कर दिया जाता है, जिससे कि भवन या मूर्ति की ऊँचाई-निचाई का एक अन्दाज़ हो जाय। प्राचीन शिल्पी, देवता की महानता और मनुष्य की लघुता दिखाने के लिए ही उसने पास छोटे आकार में उपासक दिखाते थे।

बीच का कैलाश का मंदिर, संसार की उन अनुपम कृतियों में से एक है जिस पर हमारा देश गर्व करता है। इसमें शिल्पियों की साधना को देखकर आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है। उन्होंने बिना ईंट, चूने और चिनाई के, केवल छेनियों से ही काट-काट कर इतने विशाल मंदिर की रचना कर दी गई है। कैलाश में पत्थर को ही काट-काट कर बनाये गये, पतले-पतले छज्जे तैयार करते समय, शिल्पी अपने प्राणों पर खेला होगा, पर क्या मजाल कि एक छैनी भी ज्यादह चल जाय? कैलाश की विशालता का अन्दाज़ इसी से लगाया जा सकता है कि उसका प्रांगण ही लगभग पौने तीन सौ फ़ीट का है। कैलाश के खम्भे अनूठे हैं। इनमें तरह-तरह के अलंकरण हैं।

कैलाश प्रतिमाओं का तो लोक ही है। पृथ्वी का उद्धार करते वाराह, हिरण्य कश्यप का वक्ष विदीर्ण करते नरसिंह, बलि के सिर पर पैर रखकर ब्रह्मांड मापते त्रिविक्रम विष्णु व भगवान शिव की विविध लीलाओं से कैलाश भरा पड़ा है। कैलाश की गज-लक्ष्मी की प्रतिमा बहुत सुन्दर है। एलोरा की प्रतिमायें भारतीय शिल्प की सबसे सुन्दर कृतियां समझी जाती हैं; फिर यह तो मूर्तिमान सौन्दर्य तत्व है। श्री देवी कमलों से भरे एक सरोवर के तट पर पद्मासन पर बैठी हैं। उनके दोनों ओर हाथियों के दो बच्चे अपनी सूड़ों में घड़े दबाये, तिरछे खड़े हैं। ऊपर दो बड़े हाथी उनका अभिषेक कर रहे हैं। श्री देवी पर छत्र तना

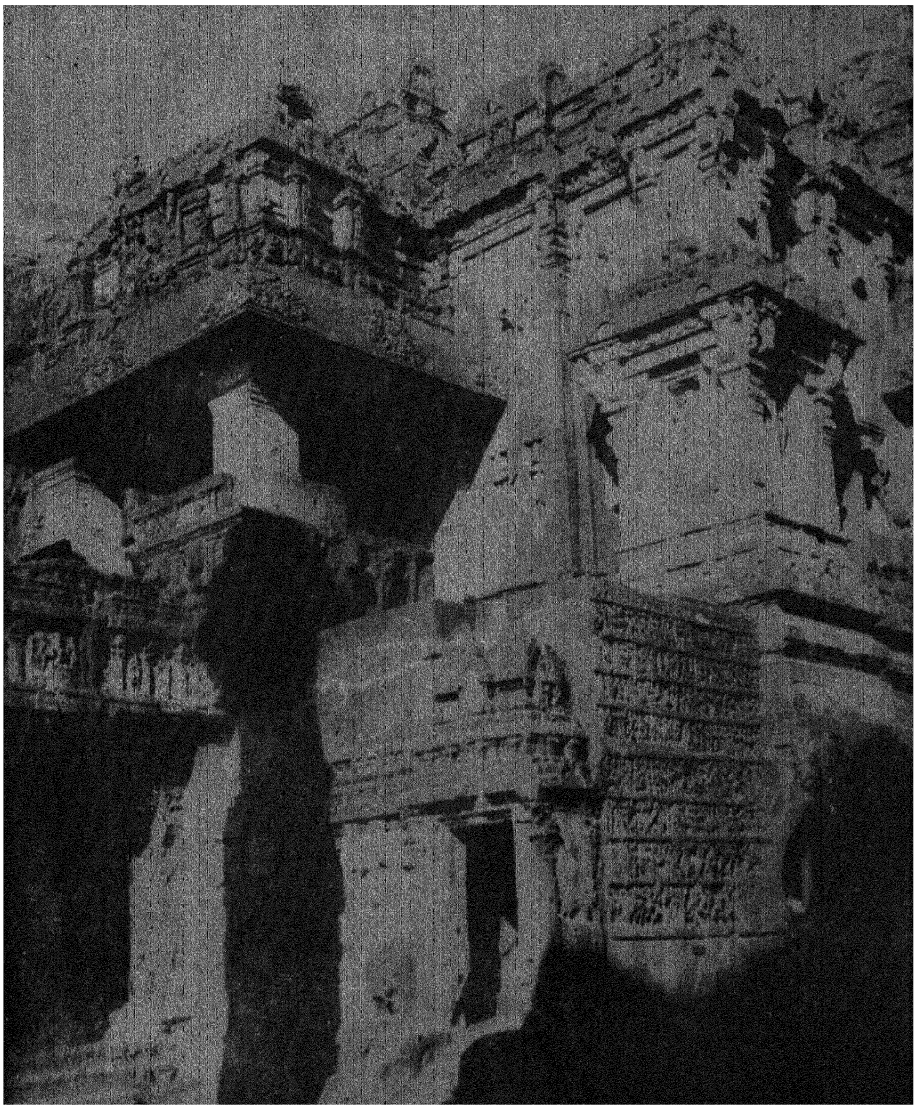

कैलाश, एलोरा.

है। गन्धर्व उन पर फूल मालायें चढ़ा रहे हैं। यह प्रतिमा तोड़ डाली गई है। कला की सबसे बड़ी शत्रु धर्मान्धता रही है। धर्म के मूल, शाश्वत तत्व ने स्वर्ग की जो शोभा धरती पर उतारी उसे साम्प्रदायिकों ने खंडहर बना दिया।

देवराज इन्द्र

कैलाश को रंगमहल कहा जाता है। उसकी छत पर अनेक चित्र आंके गये हैं, पर अजंता की चित्रकला के आगे, वे कहीं टिक नहीं पाते।

एलोरा की प्रतिमायें इतनी शोभामयी हैं कि देखते-देखते जी नहीं भरता। शिव की भैरव-रूप की जो मूर्तियां हैं वे भी अपने वातावरण की सृष्टि करती हैं। जिस कथा-वस्तु को लेकर शिल्पी आंकने बैठा है, उसमें वह पूर्ण सफल हुआ है। मुझे एलोरा की शिव की नृत्य करती प्रतिमायें बेहद पसन्द हैं। आनन्द-मूर्ति शिव नृत्य कर रहे हैं। उनके कंठ में रत्न हार झूल रहा है। मुख पर

उल्लास और ओठों पर मुस्कान है। उनके निकट ही माता उमा स्कंद को लिए खड़ी हैं।

सीता की नहानी से लगभग २०० फ़ीट दूर पर जैन गुफायें हैं। यह बौद्ध और ब्राह्मण गुफाओं की अपेक्षा नई हैं। इनकी रचना आठवीं शताब्दी से बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी तक होती रही है। यह संख्या में अधिक नहीं, केवल पाँच-छः हैं। इनमें एक मंदिर है, जिस छोटा कैलाश कहते हैं क्योंकि यह कैलाश जैसा ही बनाया गया है। इसका आकार भी छोटा है। फिर गुफाओं का समूह है जिसे इन्द्र-सभा कहते हैं। इसमें पार्श्वनाथ व अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमायें हैं। वे अपने घुटनों पर हाथ रक्खे बैठे हैं। मुख पर शांतिमयी भावनायें हैं और बुद्ध जैसी ही भव्यता है। कहीं-कहीं उनके निकट नाग खड़ा, अपने फन की छाया कर रहा है। इसमें तथा दूसरी गुफा जगन्नाथ सभा में भी ऐसी ही मूर्तियों के दर्शन होते हैं। बुद्ध मूर्ति तथा इनमें इतना ही अन्तर दिखाई देता है कि इनके शरीर पर वस्त्र नहीं हैं। इन्द्र और इन्द्राणी को शिल्पी ने कई स्थानों पर आंका है। एक मूर्ति में वे एक वृक्ष के नीचे ऐरावत पर बैठे हैं। उनके निकट ही एक स्त्री खड़ी है। वस्तुतः इन्द्र राजत्व के प्रतीक हैं, जो तप के आगे निष्प्रभ हो गये और बुद्ध तथा महावीर के निकट सेवक के रूप आंके गए। पत्र बढ़ता जा रहा है इसलिए आज बस में यहाँ से बम्बई जा रहा हूँ। शेष कुशल है।

तुम्हारा
जगदीश दादा

एलीफैन्टा

बम्बई
१४-१२-५०

प्रिय सत्येद्र,

मैं इस माया-नगरी बम्बई में आ गया। मुझे यहाँ बड़े-बड़े मकान दिखाई दे रहे हैं; चौड़ी-चौड़ी सड़कें-उन पर चहल-पहल। लोग तेज़ी से चलते हैं। उन्हें किसी से बात करने की भी फ़ुरसत नहीं है। ऐसा लगता है कि मानों किसी ने उनमें किसी मशीन का पुर्जा लगा दिया है। जबतक चाबी भरी रहेगी, चलते रहेंगे। पैसे कमाते रहेंगे। लेकिन मैं इन्हें देखकर कभी-कभी अपने मन से पूछ उठता हूँ, 'क्या इन्हें इनका यांत्रिक जीवन, वह संतोष, वह शांति और तृप्ति दे सकेगा जिसके बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं होता?' जब यह थक जाते हैं तो सिनेमा घरों में जाकर भर जाते हैं। लेकिन क्या सिनेमा इनके जीवन की एक-रसता दूर कर सकेगा? कम से कम मुझे विश्वास नहीं। बम्बई से मेरा मतलब उस सारी पाश्चात्य संस्कृति से है, जिसने अंधकारमयी रात की भांति हमारे नगरों को अपने में आवरण ढ़क लिया है। इनकी आत्मा को सुख तो भारत की अपनी संस्कृति ही दे सकती है, इनकी एक-रसता तो अपनी कला ही दूर कर सकती है।

मैंने दो-तीन दिन में ही बम्बई के सभी दर्शनीय स्थान देख डाले। हैंगिंग गार्डन, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूज़ियम, गेट वे ऑफ इंडिया आदि, लेकिन एलीफैन्टा देखकर ऐसा लगा कि मेरी बम्बई की यात्रा सफल हो गई। कल रविवार का दिन था। रविवार को एपोलो बन्दर से एलीफैन्टा के लिए स्टीमर जाता है।

सात-आठ मील है। उसने थोड़ी ही देर में हमें राजघाट पर उतार दिया। यहाँ से हमें लगभग एक मील चलना पड़ा कि एलीफैन्टा की गुफायें आ गईं। रास्ता पहाड़ी और ऊँचा-नीचा था इसलिए कुछ थक गया था पर एलीफैन्टा को देखने का लोभ था। बच्चे नया खिलौना देखकर उसपर टूट पड़ते हैं पर क्या हम बड़े भी अपने प्रिय विषय की नई पुस्तकों को देखने का लोभ संवरण कर पाते हैं? यही बात इन कला-तीर्थों के साथ भी है।

एलीफैन्टा का मूल नाम धारा नगरी है पर यहाँ पत्थर का हाथी पड़ा देखकर पुर्तगाली लोगों ने इसका नाम एलीफैन्टा रख दिया। वह हाथी अब बम्बई के विक्टोरिया गार्डन के प्रिंस एलबर्ट म्युज़ियम में है। मैं उसे भी देख आया।

एलीफैन्टा की गुफायें एक पहाड़ी को काटकर बनाईं गईं हैं। उनका द्वार उत्तर की ओर है। गुफा की दीवारों पर बड़ी-बड़ी नौ प्रतिमायें आंकी गई हैं और भीतर ही एक मंदिर भी है। गुफा में हलकी सी रोशनी रहती है पर प्रतिमायें स्पष्ट दिखाई देती हैं।

एलीफैन्टा के इस गुहा-मंदिर में शिल्पियों ने केवल भगवान शिव के विविध रूप और उनकी जीवन की घटनाओं को साकार किया है। कला मंडप में प्रवेश करते ही जिस प्रतिमा की भव्यता और महानता में दर्शक अपने को खो देता है, वह त्रिमूर्ति है। शायद शिव की इतनी विशाल प्रतिमा किसी और जगह नहीं है, लगभग सत्रह-अठारह फीट ऊँची, तेईस चौबीस फीट लम्बी। इसमें केवल वक्ष के तनिक नीचे तक के भाग को आंका गया है।

इसका प्रसिद्ध नाम 'त्रिमूर्ति' है। पोस्टकार्ड पर भी, प्रचलित नाम होने के कारण, 'त्रिमूर्ति' शब्द ही छापा गया है किन्तु यह त्रिमूर्ति नहीं है, त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सम्मिलित मूर्ति। इसमें केवल शिव के ही तीन स्वरूप हैं। भगवान शिव को पंचमुख परमेश्वर कहा जाता है और उनके नाम अघोर, ईशान, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात बताये जाते हैं। शिव मंदिरों में दीवाल से सटाकर, केवल तत्पुरुष, अघोर और वामदेव ही आंके जाते हैं। इसे महेश्वर मूर्ति कहते हैं।

संहार मूर्ति शिव, —एलीफैन्टा

ए ली फै न्टा

महेश्वर मूर्ति का बीच का मुख तत्पुरुष, शिव का कल्याणकारी स्वरूप है। उसपर अपूर्व सौम्यता और शांति है। उनके कमल के से नयन अधमुंदे हैं। चौड़ी छाती पर मोतियों का हार है और माथे पर रत्नों का किरीट, जिसमें मोतियों की अनगिन मालायें झूल रही हैं। बीच में हीरे टंके हैं। उनकी जटायें भी मुड़कर किरीट में मिल गई हैं, उनमें सोलह कलाधारी चन्द्र है। उनके एक हाथ में माला है और दूसरे में बिजौरे का फल। शिव का अघोर मुख, 'रुद्र' नाम को सार्थक कर रहा है। मुख पर कठोरता, उठी हुई मूछें, एक हाथ में सर्प और दूसरे में खप्पर। मुकुट में सर्प कुंडली मारे बैठा है। उसमें कपाल भी है। जान पड़ता है कि सर्वनाश के सब प्रतीक एकत्रित हो गये हैं। तीसरा मुख वामदेव अत्यंत लावण्यमय है। यह नारी आकृति प्रतीत होता है। यह शिव का शक्ति स्वरूप है जो उससे अलग नहीं किया जा सकता। यह माता उमा का रूप है। उनके दिव्य मुख पर घुंघराली अलकें हैं और कानों में मकराकृति कुंडल हैं। उनके माथे के मुकुट में मोती की लड़ियाँ झूल रहीं हैं, बीच में कमल का खिला हुआ फूल है। उमा के हाथ में भी कमल है।

एलीफैन्टा में अर्धनारीश्वर की प्रतिमा भी महेश्वर मूर्ति के निकट ही है। इसमें आधा दाहिना, शरीर-भाग शिव का और बाई ओर के अवयव और अलंकरण उमा के हैं। इसमें दार्शनिक तत्व कला का माध्यम लेकर उतरा है। पुरुष और प्रकृति को, ब्रह्मांड की दो शक्तियों को मिलाकर भी पृथक् रक्खा गया है। पार्वती के भाग की ओर दासियाँ खड़ीं चंवर डुला रही हैं और शिव की ओर उनका नन्दी बैठा है। भारतीय साहित्य में भी शिव और पार्वती की इस एक-रूपता का वर्णन मिलता है। महाकवि कालिदास ने कहा है—"वाणी और अर्थ जिस प्रकार प्रथक् होते हुये भी वास्तव में एक हैं, उसी प्रकार पार्वती और परमेश्वर भी एक रूप ही हैं।" गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी जगत-जननि सीता की उपमा खोजते हुये कहा है 'गिरा मुखर, तन अरध भवानी'। यह 'तन अरध भवानी' इस अर्धनारीश्वर रूप की ओर ही संकेत है।

एक पाषाण चित्र में शिव तने खड़े हैं, मानों दृढ़ संकल्प ही मूर्तिमान हो गया हो। भागीरथी उनकीं जटाओं में गिर रही हैं। उनका हाथ विश्व को अभय देने के लिए उठा है। उनके भुजबन्द सर्पों के हैं जो अपना फन उठाये हैं। शिव की

जटाओं में भागीरथी तीन सम्मिलित प्रतिमाओं में दिखाई गई हैं। सम्भवतः यह गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। शिव के निकट ही उमा तनिक तिरछी खड़ी हैं। ऊपर देवता दिखाई दे रहे हैं और नीचे शिव के गण हैं।

शिव और पार्वती का विवाह, हमारे शिल्पियों और कवियों, दोनों को बहुत प्रिय रहा है। दोनों साथ-साथ भाव-गगन में समान स्तर पर उड़ते दिखाई देते हैं। वहाँ वह उनका भैरव रूप भूल जाते हैं और उन्हें उनका वह वर वेश याद आ जाता है, "जब शरीर पर लिपटी चिता की भस्म उज्वल अंगराग बन गई थी, पीली पुतली का चमकता हुआ तीसरा नेत्र, हरताल का सुन्दर तिलक बन गया था। अंगों के सर्प आभूषण बन गये थे और उनके फनों पर जो मणियाँ थीं, वे ज्यों की त्यों चमकती रह गई थीं।" एलीफैन्टा के शिव-विवाह में शिव खड़े हैं। इस समय उनके शरीर पर सर्प नहीं है। उनका मुकट रत्नों से जड़ा है और कंधें पर यज्ञोपवीत लहरा रहा है। उमा नव वधू की मांति शरमाई हुई सिर नीचा किये खड़ी हैं। पास ही उनके पिता दक्ष खड़े हैं। ब्रह्मा विवाह करा रहे हैं। विष्णु और लक्ष्मी पास ही खड़े शिव की शोभा देख रहे हैं। आकाश में देवता अपनी पत्नियों के साथ यह दृश्य देखने आ जुड़े हैं।

शिव का भैरव रूप भी एलीफैन्टा में अंकित हुआ है। ऐसा लगता है कि प्रलय का सूर्य मेघों को फाड़कर निकल रहा है। उनके आठ हाथ हैं जिनमें से कुछ भग्न हैं। शिव के एक हाथ में खप्पर है और दूसरे में तलवार। ऐसा लगता है कि वे या तो अंधकार का वध करने जा रहे हैं अथवा सती अपने पिता प्रजापति के यज्ञ में प्राणों की आहुति दे चुकीं हैं और संहार-मूर्ति रुद्र का कोप जाग उठा है।

एलीफैन्टा में और भी कई प्रतिमायें हैं जिनमें रावण द्वारा कैलाश उठाने की मूर्ति भी है। एलीफैन्टा में भीतर अंधेरा सा है और यह अंधेरा इस वातावरण को और भी गम्भीर बना देता है।

एलीफैन्टा के सैलानियों का मेला केवल चार-पाँच बजे तक ही रहता है। शाम को जहाज़ चल देता है। बम्बई के नागरिक फिर अपने कार्य में मशीन की तरह जुट जाते हैं।

दो-तीन बम्बई और रहूँगा, फिर चलदूंगा।

तुम्हारा
जगदीश दादा

देलवाड़ा

आबू
२१-१२-५४

प्रिय सत्येन्द्र,

बहुत दिन पहले की बात है। एक बार दो भाई सौराष्ट्र के जैन-तीर्थों की यात्रा करने निकले। उनके साथ-साथ उनके परिवार भी थे। उनका नाम था, वस्तुपाल और तेजपाल।

रास्ते में खर्च तो पड़ता ही है। उन्होंने अपने साथ मुहरों की पोटलियाँ बांध कर रख लीं। चलते-चलते जब वे सौराष्ट्र की सीमा पर पहुँचे तो किसी ने कहा, 'अरे! तुम कहाँ जा रहे हो? सौराष्ट्र में तो डाकुओं का बड़ा आतंक है।' दोनों भाइयों के हृदय क्षणभर के लिए कांप गए। फिर दोनों ने आपस में सलाह की। एक बोला, 'चलो, हम वापस लौट चलें।' दूसरे ने कहा, 'नहीं, हम व्यापार करने नहीं निकले, तीर्थंकरों के दर्शनों का पवित्र संकल्प लेकर घर से निकले हैं। प्रत्येक मंगल कार्य में विघ्न ती आते ही हैं, पर दृढ निश्चयी उनसे डर कर अपने कामों को नहीं छोड़ते। वह तो बड़ी श्रद्धा के साथ अपने पथ पर बढ़ते ही जाते हैं।'

'पर यदि डाकुओं ने आक्रमण कर दिया, तो ?' छोटे भाई ने शंका की।

'भाई, भय सदा धन का रहता है। मनुष्य के प्राणों का नहीं होता।' बड़ा भाई बोला, 'जितना ले चलना बहुत ज़रूरी हो उतना तो रख लें, बाकी सब धन हम यहीं जंगल में गाड़ दें। स्थान पहचान लें। लौटते समय यहीं से लेते चलेंगे।'

वे दोनों वन में गए और एक विशाल वृक्ष की जड़ के निकट खोदने लगे। खोदते-खोदते उनकी कुदाली किसी बर्तन से टकराई, और खोदा तो मुहरों से भरे घड़े निकले। उनके मुख पर क्षण भर के लिए प्रसन्नता की एक लहर आई पर तुरंत ही वे सोच में पड़ गए, 'इस धन का क्या होगा? यह हमारी वह कमाई नहीं है जो श्रम के पसीने से धुल कर पवित्र हो गई हो।' आखिर यह निश्चय हुआ कि यह धन पुण्य-कार्यों में ही लगा दिया जाय। अनाथ पिंडक ने जिस श्रद्धा से जेतवन दान किया था, उसी श्रद्धा से वस्तुपाल और तेजपाल ने गिरनार, आबू व अन्य स्थानों पर महान कला-तीर्थों की रचना कराई।

में बड़ौदा, अहमदाबाद आदि घूमता फिरता आबू आ गया हूँ। यहाँ चार-पांच हज़ार फ़ीट ऊँची पहाड़ी की हरी-भरी घाटी में जैन मंदिर हैं। इसे देलवाड़ा या देववाड़ा कहते हैं। यों तो यहाँ चार-पांच मंदिर हैं किंतु शिल्पियों ने दो मंदिरों में जो कला-साधना की है, उसे देखकर संसार भर के पर्यटक दंग रह जाते हैं। इनमें से एक गुजरात के राजा भीमदेव के मंत्री विमलशाह का सन् १०३१ में बनवाया हुआ है। दूसरे की रचना वस्तुपाल और तेजपाल ने सन् १२३० में कराई। इस युग में गुजरात और राजपूताना में स्थापत्य की एक नई शैली का विकास हो रहा था। इसमें खम्भों को कलामयी प्रतिमाओं और अलंकरणों से सजा दिया जाता था। विमलशाह का मंदिर इसी शैली का एक अत्यंत सुन्दर नमूना है। विमलशाह और वस्तुपाल के मंदिरों के समय में दो सौ वर्ष का अंतर है, फिर भी दोनों की शैली एक ही है।

आबू में एक बड़ी धर्मशाला है, जिसमें में ठहरा हूँ। दिसम्बर का महीना है। आबू पहाड़ी जगह है, सर्दी और भी अधिक है। आबू की पहाड़ियों में सूर्य का उदय और अस्त बहुत सुहावना लगता है। जब सूर्य की किरणें, आबू के दूध के से धुले संगमर्मर पर पड़ती हैं, तो वह सोने सा दमकने लगता है।

विमलशाह के मंदिर में आदिनाथ तीर्थंकर पद्मासन लगाये बैठे हैं। दिग्गज, अपनी सूड़ों में जल-घट लिए उनका अभिषेक कर रहे हैं। मंदिर में विमलशाह की भी प्रतिमा हैं, जिसमें वे घोड़े पर बैठे दिखाई देते हैं। पीछे एक सेवक छतरी लिए है। देलवाड़ा के मंदिरों का महत्व उनके खम्भे और छत

विमलशाह का मंदिर, देलवाड़ा

(फोटो पुरातत्व विभाग के सौजन्य से)

के अलंकरण व सुशोभन से हैं। इनके खम्भों पर नृत्य करती, बंशी बजाती तथा विविध मुद्राओं में खड़ी, पुरुष व स्त्रियों की आकृतियाँ दक्षिणापत्य के विशाल मंदिरों की याद दिलाती हैं। मंदिर के मुख्य उपासना-गृह में ऋषभनाथ; आदि-नाथ की प्रतिमा है। उसके अतिरिक्त मंडप के चारों ओर ५२ कोठरियां हैं। इनमें जैन तीर्थंकरों की ही प्रतिमायें हैं। इनमें से कुछ की छत पर हिन्दू कथायें भी आंकी गई हैं, जैसे कालिय दमन कृष्ण तथा हिरण्यकश्यप का वध करते हुये नरसिंह आदि। यह सब समन्वय-साधना का ही परिचय देती हैं। इस मंदिर में खम्भे के ऊपर के मकरों के मुंह से निकलने वाले, फूलोंदार तोरण की शोभा देखते ही बनती है। ऊपर की छत में संगमर्मर का एक बहुत ही सुन्दर फूल कटा है, जिसकी गोलाकृति के बाहर सरस्वती की प्रतिमायें हैं।

आंगन को पार कर वस्तुपाल, तेजपाल के मंदिर में जाते हैं। इसके खम्भे व छत भी विमल शाह के मंदिर जैसे ही हैं। यह मंदिर बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के लिये बनाया गया है। इसकी छत में उनके जीवन की घटनायें भी आंकी गई हैं। इनमें नेमिनाथ के विवाह के जुलूसों के दृश्य बड़ी बारीकी के साथ आंके गये हैं। आगे तलवारें तानकर चलते हुये सैनिक, उनके पीछे घोड़े नचाते हुए सवार—कहीं हाथियों के जुलूस हैं, कहीं कहार कंधों पर डोलियाँ लिए जा रहे हैं।

कहते हैं कि नेमिनाथ जब गिरनार के राजा की पुत्री रजिमती देवी से विवाह करने गये तो उन्हें नगर के बाहर उन पशुओं के शव दिखाई दिये जिनको विवाह के भोज के लिए मारा गया था। यह देखकर उनका चित्त कुछ उचट गया कि उन्होंने विवाह करने से ही इनकार कर दिया। उनकी वाग्दत्ता वधू देवि रजिमती ने भी अपने राजसी वैभव को त्याग दिया और वे भी भगवान के साथ उनके पुण्य-पथ की अनुगामिनी बनीं। तेजपाल के मंदिर के शिल्पियों ने दोनों की ही अलग अलग मूर्तियाँ आंकीं हैं। इसी मंदिर में वस्तुपाल व तेजपाल की भी अपनी पत्नियों सहित प्रतिमायें हैं।

मंदिर से सटा हुआ हाथीखाना है। इसमें संगमर्मर के बड़े-बड़े हाथी खड़े हैं। उनके ऊपर हौदे हैं और उनकी पीठ पर जंजीरें लटक रहीं हैं। गले में तौक हैं। हाथी तो भारतीय कलाकार को सदा प्रिय रहा ही है।

शेष कुशल है। मैं कल सबेरे दिल्ली के लिए रवाना हो जाऊँगा।

तुम्हारा,
जगदीश दादा

कुतुब

दिल्ली
२५-१२-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

महाभारत में एक कथा आती है। एक बार गुरु द्रोण ने अपने सब शिष्यों को बुलाकर धनुर्विद्या की परीक्षा लेनी चाही। वे एक पेड़ के नीचे आसन डालकर बैठ गये और वहीं उन्होंने अपने सब शिष्यों को बुला लिया। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन और दुःशासन आदि सब अपने-अपने तरकस और वाण लिये खड़े थे। सब गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा द्रोण ने युधिष्ठिर को पुकारा। वे हाथ जोड़ कर आचार्य के सामने आ खड़े हुये। द्रोण ने पूछा, 'वत्स! तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?' द्रोण ने निशाना लगाने के लिए पेड़ पर एक चिड़िया टांग दी थी। युधिष्ठिर ने उसे देखा, फिर बोले, 'मैं आप को, अपने भाइयों को, वृक्ष को और इस चिड़िया को देख रहा हूँ।' द्रोण बोले, 'हट जाओ। तुम निशाना नहीं लगा सकते।' इसी प्रकार वे सब को बुलाते गये। सबने यही उत्तर दिया। द्रोण उन्हें हटाते गये। अंत में अर्जून की बारी आई। वे बोले, 'मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा, न आप, न भाई, न वृक्ष। मुझे केवल चिड़िया और वह भी उसका सिर दिखाई दे रहा है।' द्रोण के मुख पर संतोष की एक रेखा दौड़ गई। उन्होंने कहा, 'अपना वाण छोड़ दो।' वाण छूटते ही चिड़िया ज़मीन पर आ गिरी।

सत्येन्द्र, कला यात्री को न सब देखना पड़ता है और न केवल चिड़िया का सिर। वह देखता सब कुछ है। जो नगर मिलते हैं, वह उनके बाजारों को,

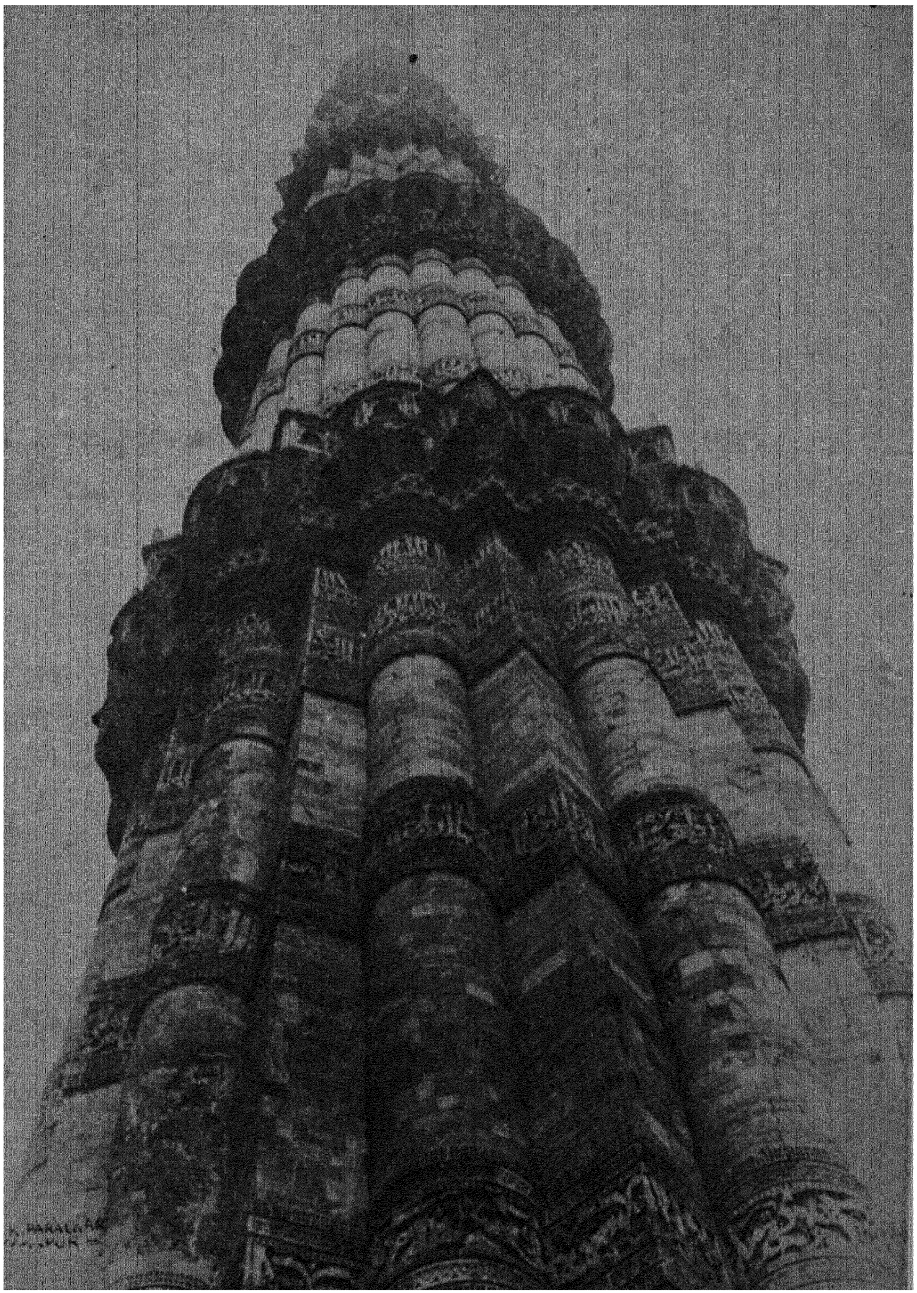

कुतुबमीनार, दिल्ली.

कुतुब

दिल्ली
२५-१२-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

महाभारत में एक कथा आती है। एक बार गुरु द्रोण ने अपने सब शिष्यों को बुलाकर धनुर्विद्या की परीक्षा लेनी चाही। वे एक पेड़ के नीचे आसन डालकर बैठ गये और वहीं उन्होंने अपने सब शिष्यों को बुला लिया। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन और दुःशासन आदि सब अपने-अपने तरकस और वाण लिये खड़े थे। सब गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा द्रोण ने युधिष्ठिर को पुकारा। वे हाथ जोड़ कर आचार्य के सामने आ खड़े हुये। द्रोण ने पूछा, 'वत्स! तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?' द्रोण ने निशाना लगाने के लिए पेड़ पर एक चिड़िया टांग दी थी। युधिष्ठिर ने उसे देखा, फिर बोले, 'मैं आप को, अपने भाइयों को, वृक्ष को और इस चिड़िया को देख रहा हूँ।' द्रोण बोले, 'हट जाओ। तुम निशाना नहीं लगा सकते।' इसी प्रकार वे सब को बुलाते गये। सबने यही उत्तर दिया। द्रोण उन्हें हटाते गये। अंत में अर्जून की बारी आई। वे बोले, 'मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा, न आप, न भाई, न वृक्ष। मुझे केवल चिड़िया और वह भी उसका सिर दिखाई दे रहा है।' द्रोण के मुख पर संतोष की एक रेखा दौड़ गई। उन्होंने कहा, 'अपना वाण छोड़ दो।' वाण छूटते ही चिड़िया ज़मीन पर आ गिरी।

सत्येन्द्र, कला यात्री को न सब देखना पड़ता है और न केवल चिड़िया का सिर। वह देखता सब कुछ है। जो नगर मिलते हैं, वह उनके बाजारों को,

कुतुब

दिल्ली
२५-१२-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

महाभारत में एक कथा आती है। एक बार गुरु द्रोण ने अपने सब शिष्यों को बुलाकर धनुर्विद्या की परीक्षा लेनी चाही। वे एक पेड़ के नीचे आसन डालकर बैठ गये और वहीं उन्होंने अपने सब शिष्यों को बुला लिया। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन और दुःशासन आदि सब अपने-अपने तरकस और वाण लिये खड़े थे। सब गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा द्रोण ने युधिष्ठिर को पुकारा। वे हाथ जोड़ कर आचार्य के सामने आ खड़े हुये। द्रोण ने पूछा, 'वत्स! तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?' द्रोण ने निशाना लगाने के लिए पेड़ पर एक चिड़िया टांग दी थी। युधिष्ठिर ने उसे देखा, फिर बोले, 'मैं आप को, अपने भाइयों को, वृक्ष को और इस चिड़िया को देख रहा हूँ।' द्रोण बोले, 'हट जाओ। तुम निशाना नहीं लगा सकते।' इसी प्रकार वे सब को बुलाते गये। सबने यही उत्तर दिया। द्रोण उन्हें हटाते गये। अंत में अर्जून की बारी आई। वे बोले, 'मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा, न आप, न भाई, न वृक्ष। मुझे केवल चिड़िया और वह भी उसका सिर दिखाई दे रहा है।' द्रोण के मुख पर संतोष की एक रेखा दौड़ गई। उन्होंने कहा, 'अपना वाण छोड़ दो।' वाण छूटते ही चिड़िया ज़मीन पर आ गिरी।

सत्येन्द्र, कला यात्री को न सब देखना पड़ता है और न केवल चिड़िया का सिर। वह देखता सब कुछ है। जो नगर मिलते हैं, वह उनके बाजारों को,

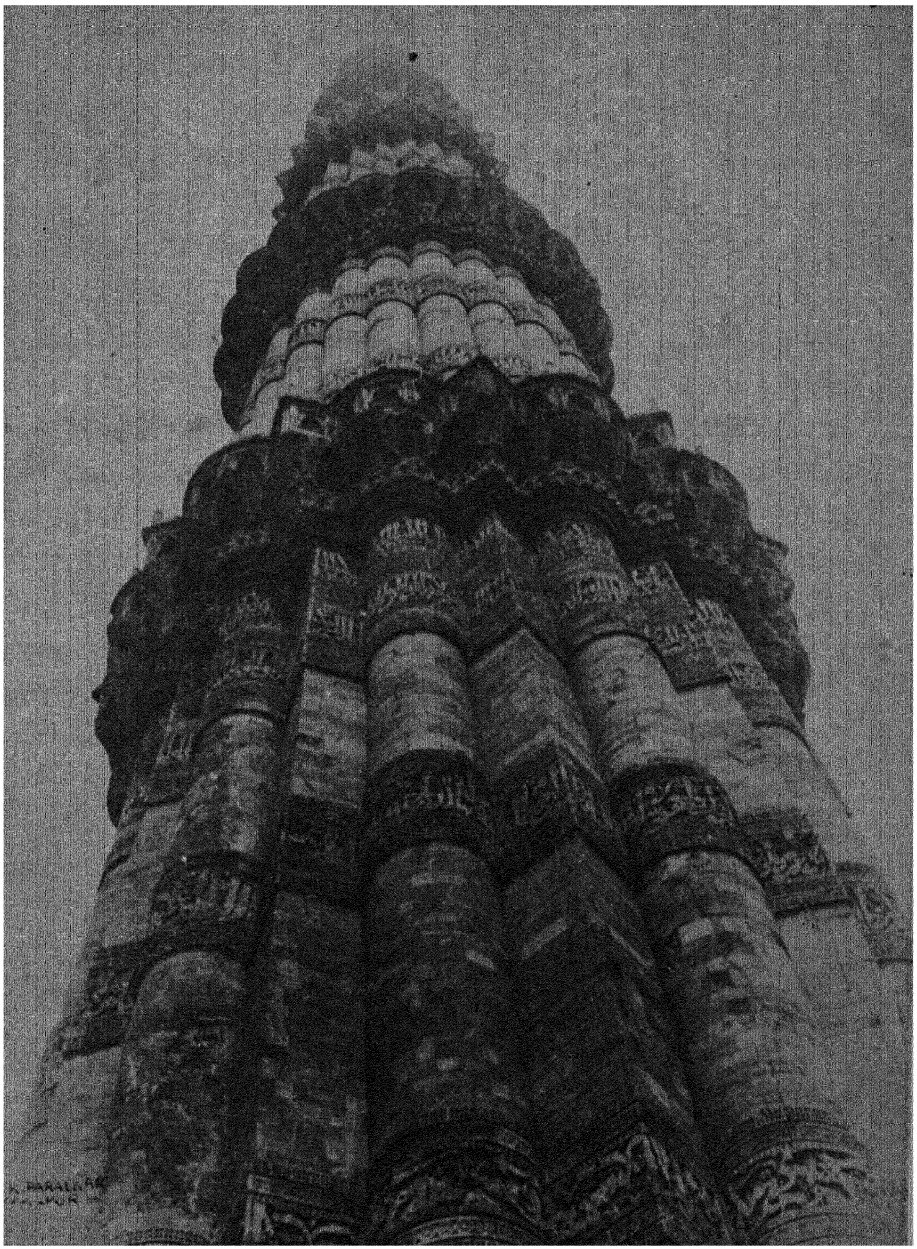

कुतुबमीनार, दिल्ली.

वहां के लोगों को, लोगों के रहन-सहन को, नई-नई इमारतों को देखता चलता है, पर उसका ध्यान अपने कला-तीर्थ की ओर ही रहता है। मैंने दिल्ली में आकर यहां का चांदनी चौक देखा, जहां मानव समुदाय लहर सा उमड़ता रहता है, एक के बाद एक। कनाट प्लेस देखा। इस युग की दिल्ली की सुन्दरतम कला-कृति, बिड़ला मंदिर देखी। उससे सटी हुई बड़ी धर्मशाला, एक ओर बुद्ध का मंदिर, पीछे नाटच-गृह और उपवन। मंदिर में लक्ष्मी-नारायण की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस पर भारतीय स्थापत्य की वह छाप दिखाई थी जो हिन्दू विश्वविद्यालय में दिखाई देती है। आलीशान जामा मस्जिद भी हमारी कला का सर्वांग सुन्दर नमूना है। बाकी रेडियो स्टेशन, राष्ट्रपति भवन और पार्लिया-मेंट हाउस, सब की भवन निर्माण शैली विदेशी है। इस देश की धरती से उसका केवल इतना ही नाता है कि वह इस पर खड़ी है। तुमने श्री. ई. वी. हैवल का नाम नहीं सुना होगा। यह तुम्हारा नहीं हमारी शिक्षा का दोष है, जो हमें यह भी नहीं बताती कि हैवल कौन थे? कुमार स्वामी कौन थे? सी. एफ. एन्ड्रूज कौन थे? सिस्टर निवेदिता कौन थीं? यह वे महान आत्मायें हैं जिन्होंने भारत को सच्चे हृदय से प्रेम किया है। उसके लिये अपना जीवन अर्पित किया है। आज भी सुश्री स्टैला क्रैमरिश, कलकत्ता विश्व विद्यालय में बैठकर जिन महान ग्रंथों की रचना कर रही हैं, उनसे भारत का मस्तक ऊंचा हुआ है। श्री हैवल ने, उस समय जब अंग्रेज शासक थे और दिल्ली का नव निर्माण हो रहा था, तब एक अपील निकाली थी कि नये-नये भवन भारतीय शैली पर बनाये जावें। उस अपील पर संसार के अनेक महान व्यक्तियों के दस्तख़त थे, जार्ज बनार्ड शॉ के भी उसपर हस्ताक्षर थे। हैवल साहब की अपील पर विदेशी शासकों ने कोई ध्यान न दिया। यह दुःख की बात नहीं, दुःख तो इस बात का है कि स्वाधीनता के बाद भी दिल्ली में जो नये-नये भवन बनाये जा रहे हैं, उन सब् की शैली विलायती है। भारत के शिल्पियों को उसमें अपनी कला का प्रदर्शन करने को कोई क्षेत्र नहीं मिल रहा। कला-यात्री के मन को दिल्ली के यह नये-नये भवन न छू सके, वह उनसे मुंह मोड़कर कुतुब की ओर चल दिया, पुराने खंडहरों के बीच में, जहां भारत का वह विजय-स्तंम्भ खड़ा है।

सत्येन्द्र, यदि आज कुतुब के यह खंडहर बोल पाते तो गत युग के वैभव

कीं कथा सुनाते। एक नया इतिहास बताते। यह इतिहास मनुष्य की बर्बरता पर; युद्धों पर आधारित नहीं होते। यह मानव की संस्कृतियों के समन्वय के इतिहास होते। धर्म के विशाल बोधिवृक्ष के नीचे, भारत ने जो कला-योग साधा है, उसका इतिहास होते। यह हमें बताते कि दर्शन, साहित्य और कला के आंगन में हिन्दू, बौद्ध, जैन और मुस्लिम सदा कैसे प्रेम से गले मिलते रहे हैं? आगरे का सिकन्दरा उन शाहन्शाह अकबर की बात कहता, जिन्होंने संसार के धर्मों को खुदा के हाथ की वे उंगलियां समझा था, जिनमें से किसी को भी पकड़ कर नादान इंसान उसके दरवाज़े तक पहुंच सकता है। लाल कमल जैसा फ़तहपुर सीकरी बताता कि इसका पराग; ज्ञान अपनी सुगन्धि अरब, ईरान और मिश्र तक कैसे फैला रहा था? सत्येन्द्र, मेरे भाई, तुम्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि उन्हीं अकबर के वंशज शाहज़ादा दारा शिकोह ने, इसी फ़तहपुर सीकरी के पंच महल में बैठकर ऋग्वेद और उपनिषदों का फारसी अनुवाद कर डाला था। हाँ, तो ताज उन मुग़लों की कथा कहता जो ऊँटों पर जवाहरात भर कर नहीं ले गये। जिन्होंने इस देश को ही अपनी 'मां' समझा और इससे माथे पर ताज; अपने सच्चे अर्थों में 'ताज' रख दिया। कुतुब इस श्रृंखला की पहिली कड़ी है। इन कला-तीर्थों को भारत के शिल्पियों और संगतराशों ने उसी लगन के साथ बनाया है, जिस लगन के साथ उन्होंने अजंता और एलोरा का निर्माण किया था।

भारत पर विदेशियों के समय-समय पर जो आक्रमण होते रहे, उन्होंने इस देश की कला पर कोई प्रभाव नहीं डाला। वह पनपती रही। सिंध में अरब विजेताओं की अथवा पंजाब पर शासन करने वाले गज़नी के लोगों की बनवाई हुई कोई इमारतें नहीं मिलतीं। भारत में मुस्लिम कला का इतिहास सन १२०० के लगभग से प्राप्त होता है। इसे प्रारम्भ करने का श्रेय बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक और सुलतान अल्तमश को प्राप्त होता है। मैं, सुलतान अल्तमश की बनवाई हुई वह आलीशान मस्जिद भी देखकर आया हूँ, जो ख्वाजा साहब की दरगाह से थोड़ी दूर पर है जिसे ढाई दिन का झोंपड़ा कहते हैं।

मुस्लिम धर्म एक ही ईश्वर की निराकार उपासना पर आधारित है। मनुष्य अपने मन की प्रार्थना नियंता के आगे एकांत में तो रखता ही है, साथ ही

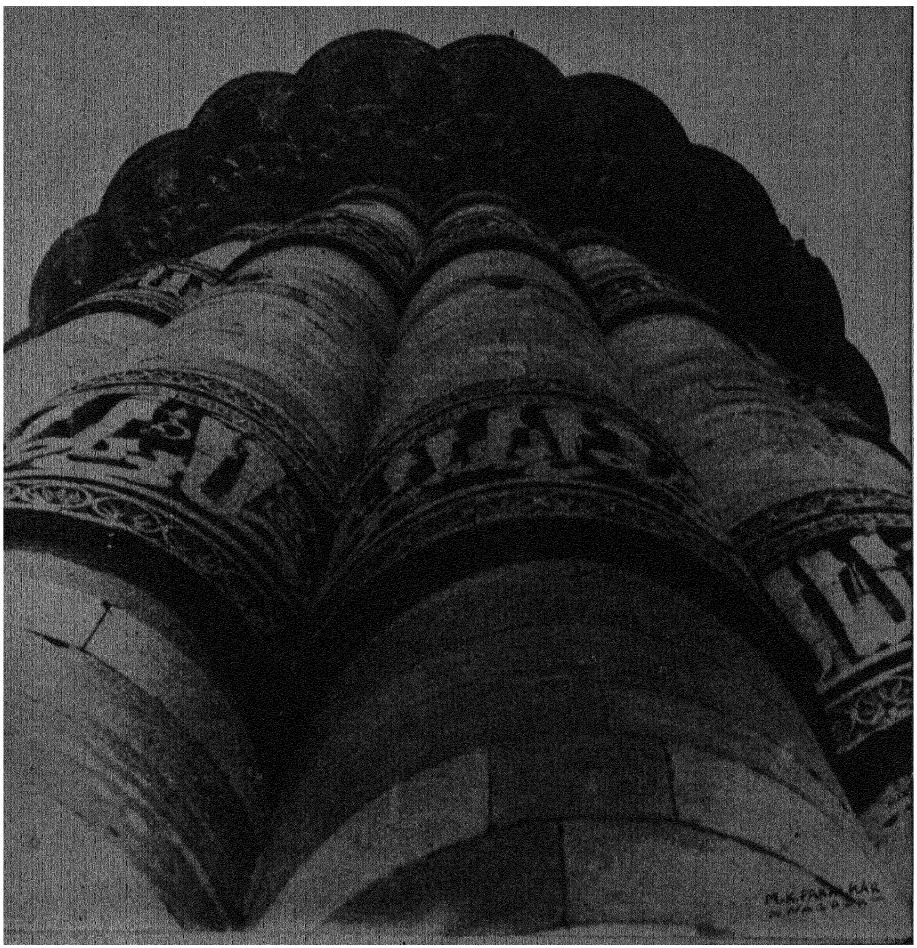

कुतुब की नक्काशी

वह यह भी चाहता है कि सब मिलकर उससे अपनी और दुनियाँ की भलाई के लिए दुआ मांगें। इसके लिए किसी ऐसी जगह का होना ज़रूरी है, जहाँ सब मिलकर इकट्ठे हो सकें। वह स्थान ऐसा हो जहाँ बरसात में भी नमाज़ पढ़ी जा सके। इसी भावना ने मस्जिदों का निर्माण कराया। मस्जिद चारों ओर से दीवार से घिरी रहती है और अक्सर कुछ ऊंचे पर भी होती है, ताकि नीचे का कोलाहल, शांत मन से नमाज़ पढ़ने वालों तक न पहुँच सके। उसकी एक दीवाल में आला होता है जिसका मुंह मक्का की ओर रहता है। एक चबूतरा भी रहता है। मस्जिद की छत पर गोल गुम्बद रहता है। द्वार बड़े-बड़े रहते हैं और उनमें महराबें रहती हैं। सातवीं, आठवीं शताब्दी की बड़ी आलीशान मस्जिदें बग़दाद में मिलतीं है, जो ख़लीफ़ा लोगों के समय की हैं। शायद तुम्हें याद हो, इन में से ख़लीफा हारूँ-अर-रशीद की न्याय-प्रियता की कहानियाँ तो मैंने तुम्हें कई बार सुनाई हैं। कहते हैं कि बग़दाद को मस्जिदों की यह परम्परा मैसोपोटामियां की प्राचीन उपासना से मिली है। जो भी हो भारत में यह कुतुब से प्रारम्भ हुई।

मस्जिदों में देवता तो थे ही नहीं, जिनकी शिल्पी अजंता, एलोरा या एलीफैन्टा की तरह मूर्तियाँ आंकता। उसने अपने कला-सृजन के लिए दूसरा क्षेत्र खोजा। वह इन मस्जिदों को भांति-भांति की बारीक पच्चीकारी से सजाने लगा। जालियाँ बनाने लगा। मैंने अहमदाबाद की सिद्दी सईद मस्जिद की एक जाली देखी है। उसकी बारीकी को देखकर मैं आश्चर्य में डूब गया था।

कुतुबुद्दीन के समय में; जिस स्थान पर कुतुब बनी है, वहां अत्यंत प्राचीन मंदिर के टूटे हुये टुकड़े पड़े थे। उन टुकड़ों को देखने से ही जान पड़ता था कि वह मंदिर कितना कला-पूर्ण होगा? कुतुबुद्दीन ने उन सब को इकठ्ठा कराया और उन्हीं से कुतुब मस्जिद और उसके निकट ही एक मीनार बनवा दी। मस्जिदों के पास मीनारें भी बनवाई जाती थीं। उन पर चढ़कर मुल्ला लोग या मौज़िन जनता को नमाज़ का आव्हान करते थे। कुतुब जामा-मस्जिद की एक मीनार है। कुछ इतिहासकारों का, जिनमें वी. ए. स्मिथ भी हैं, यह मत है कि इसका नाम सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने नाम पर नहीं रक्खा वरन् वह बग़दाद के प्रसिद्ध संत कुतुबुद्दीन के नाम पर रक्खा गया। वे बग़दाद के निकट ऊश के थे। कुतुबबुद्दीन ऐबक पहले गज़नी के सुलतान के दिल्ली में राज्य-प्रतिनिधि थे। उसी समय सन् ११९५ में कुतुब की नींव डाली गई।

कुतुब मस्जिद के अवशेष अब भी हैं। विशाल द्वार है। उस पर आयतें खुदीं हुई हैं। उस पर इतनी सुन्दर पच्चीकारी है कि देखते ही बनती है। मस्जिद के खम्भे भी नक्काशीदार हैं। उनकी बनावट पूर्ण भारतीय है। उनमें बीच-बीच में जल-कलश और उनमें से निकलते हुए फूल हैं। मस्जिद के एक द्वार के सामने स्तम्भ खड़ा है। वह किसी गुप्त-सम्राट के समय का जान पड़ता है।

कुतुब मीनार लगभग दो सौ पचास फ़ीट ऊँची है। उसके पांच खंड हैं। नीचे का खंड लगभग ८५ फीट का है, उसके ऊपर का पचास फ़ीट का, उससे ऊपर चालीस फीट का, इसी प्रकार वह छोटा होता जाता है, जहाँ पर एक खंड समाप्त होता है, कंगूरे उठे हुये हैं। उसमें छोटे आले भी बना दिये गये हैं, जो बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। इन सब पर बहुत बारीक पच्चीकारी की गई है। मीनार के भीतर से होकर ऊपर तक ज़ीना जाता है, जिसमें बीच-बीच में रोशन-दान हैं। मीनार के सामने एक गुम्बजदार द्वार है, जिसे अलाउद्दीन ख़िलजी ने बनवाया था। सुलतान कुतुबुद्दीन के बाद अनेक सम्राट यहाँ इमारतें बनवाते रहे हैं। पुण्य-लाभ लेते रहे हैं। सन् १२२१ में सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश ने मस्जिद को बहुत बढ़ा दिया और सन् १३१५ में अलाउद्दीन खिलजी ने उसे और भी बढ़ाया और इलाई दरवाज़े बनवाये। मस्जिद के दक्षिण पश्चिम की ओर एक मदरसा बनवाया। यह है कुतुब का इतिहास– कुतुब, राष्ट्र की एक अमूल्य सम्पत्ति है। इसकी पूरी रक्षा अपनी भारत-सरकार कर रही है। शायद तुम्हें यह न मालूम हो कि अपने यहाँ एक विभाग ही अलग है, जो सब पुरानी चीज़ों की रक्षा करता है। टूटने-फूटने पर उन्हें बनवाता है। तोड़ने वालों को सज़ा दी जाती है। इसे पुरातत्व विभाग कहते हैं।

शेष फिर– दो-तीन दिन यहाँ रहकर मैं आगरे चला जाऊंगा।

तुम्हारा
जगदीश दादा

ताज महल

आगरा
२९-१२-५०

प्रिय सत्येन्द्र,

मैं परसों सबेरे यहाँ आ गया। यहाँ भी दिल्ली जैसी ही कड़ाके की सर्दी है। आगरा काफ़ी बड़ा शहर है। दूर-दूर बसा हुआ भी है। आगरे की शोभा उसके ऐतिहासिक स्थल हैं, विशेष रूप से ताज। उसी के आकर्षण से विश्व भर से यात्री खिंचे चले आते हैं।

आगरे का विशाल दुर्ग लाल पत्थर की सुदृढ दीवारों से घिरा है। उसके चारों ओर एक गहरी खाई है, जिसमें किसी समय जल भर दिया जाता था। दुर्ग के पास ही आगरा फ़ोर्ट स्टेशन है। क़िला यमुना के तट पर है। दोनों के बीच में एक लम्बी सड़क है, जो ताज ले जाती है। इस सड़क के दोनों ओर तनिक ऊँचे टीले पड़ते जाते हैं, जिन पर पेड़ लगाये गये हैं। रास्ता बहुत सुहावना जान पड़ता है।

क़िले के अकबरी महल और जहांगीरी महल को देखते ही मुग़लों के वैभव के दिन आँखों के आगे नाचने लगते हैं। 'यहाँ शाहन्शाह अकबर अपनी रियाया को दर्शन देने खड़े होते थे। यह सफ़ेद, उजले, मोती सी मस्जिद है'। यह वह जगह है, जहाँ सम्राट शाहजहाँ का मयूर सिंहासन रक्खा जाता था।' गाइड बताता जा रहा था और मेरे आगे उस युग का वातावरण सजीव होता जा रहा था, 'देखिये होली के दिन इस हौज़ में रंग भरा जाता था और राजपूत और मुग़ल

सरदार होली खेला करते थे।' मेरे मुंह से एक आह निकल जाती है। क्या वे दिन फिर कभी लौटकर आवेंगे? मुझे दुर्ग के वे भवन जिनके बीच में आंगन और चारों ओर दुमंजिली अट्टालिकायें थीं, श्री-हीन, लुटे-लुटे हुये से दिखाई दे रहे थे। जब गाइड ने दीवाल में जड़े एक छोटे से गोल कांच की ओर इशारा करके कहा, 'देखिये! इसमें पूरा ताज दिखाई देता है।' तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उसकी बात सच थी।

फ़ोर्ट देखकर ताज देखने चला। कहते हैं कि शरद् पूर्णिमा की रात में ताज का सौन्दर्य अपनी सोलह कलाओं से खिल उठता है पर मैं उस समय उसका दर्शन कर सकूं, ऐसे भाग्य कहाँ? तांगे ने हमें विशाल प्रांगण में लाकर छोड़ दिया। ताज के आगे जो विशाल द्वार है, उसके ऊपर म्यूज़ियम है, जिसमें मुग़ल शाहन्शाहों के दैनिक व्यवहार की वस्तुयें रक्खी हैं। ताज का बाग़ भी बहुत सुन्दर है। मुग़ल शाहन्शाहों को बाग़ बहुत पसन्द थे। पानी के हौज़ों, उनके फ़व्वारों, तैरती हुई रंगीन मछलियों और मोरपंखी के पेड़ों का शोभा देखते हुये हम आगे बढ़े। अब हम मूर्तिमान सौन्दर्य के आगे खड़े थे। जिस प्रकार किसी महान व्यक्ति के पास जाते ही, उसके व्यक्तित्व का तेज हमारे मन पर छा जाता है उसी प्रकार मैं ताज की भव्यता के सम्मोहन में घड़ी भर मंत्रमुग्ध सा खड़ा रहा। संसार में दो ही तो वस्तुयें हैं, श्रम और प्रेम। जब यह दोनों मिल जाते हैं तो स्वर्ग भी पृथ्वी की होड़ नहीं कर पाता। शाहजहाँ के मन में लहराते अलौकिक प्रेम के महासागर और देश-विदेश के कलाकारों के साधना के श्रमकण मिलकर ताज बन गये।

ताज को देखकर मुझे दिल्ली का हुमायूं का मक़बरा याद आ गया, जिसे उनकी पत्नी हाजी बेगम ने उनकी स्मृति में बनवाया था। हुमायूं के मक़बरे के गुम्बद पर जहाँ फ़ारस की कला का प्रभाव है, वहाँ ताज के गुम्बद का मूल आधार फ़ारस का होते हुए भी उसका भारतीयकरण किया गया है। हैवल साहब ने तो यह सिद्ध किया है कि कलश, चक्र और पद्म, भारत के इन प्राचीन प्रतीकों को मिलाकर ही ताज के गुम्बद की रचना हुई है। ताज के मेहराबदार द्वारों पर जो आयतें लिखीं हैं, वें स्वयं एक आश्चर्य हैं। ऊपर और नीचे दोनों जगह के अक्षर बराबर दिखाई पड़ते हैं। भीतर एक परिक्रमा सी है, जिसमें रोशनदानों द्वारा, छन

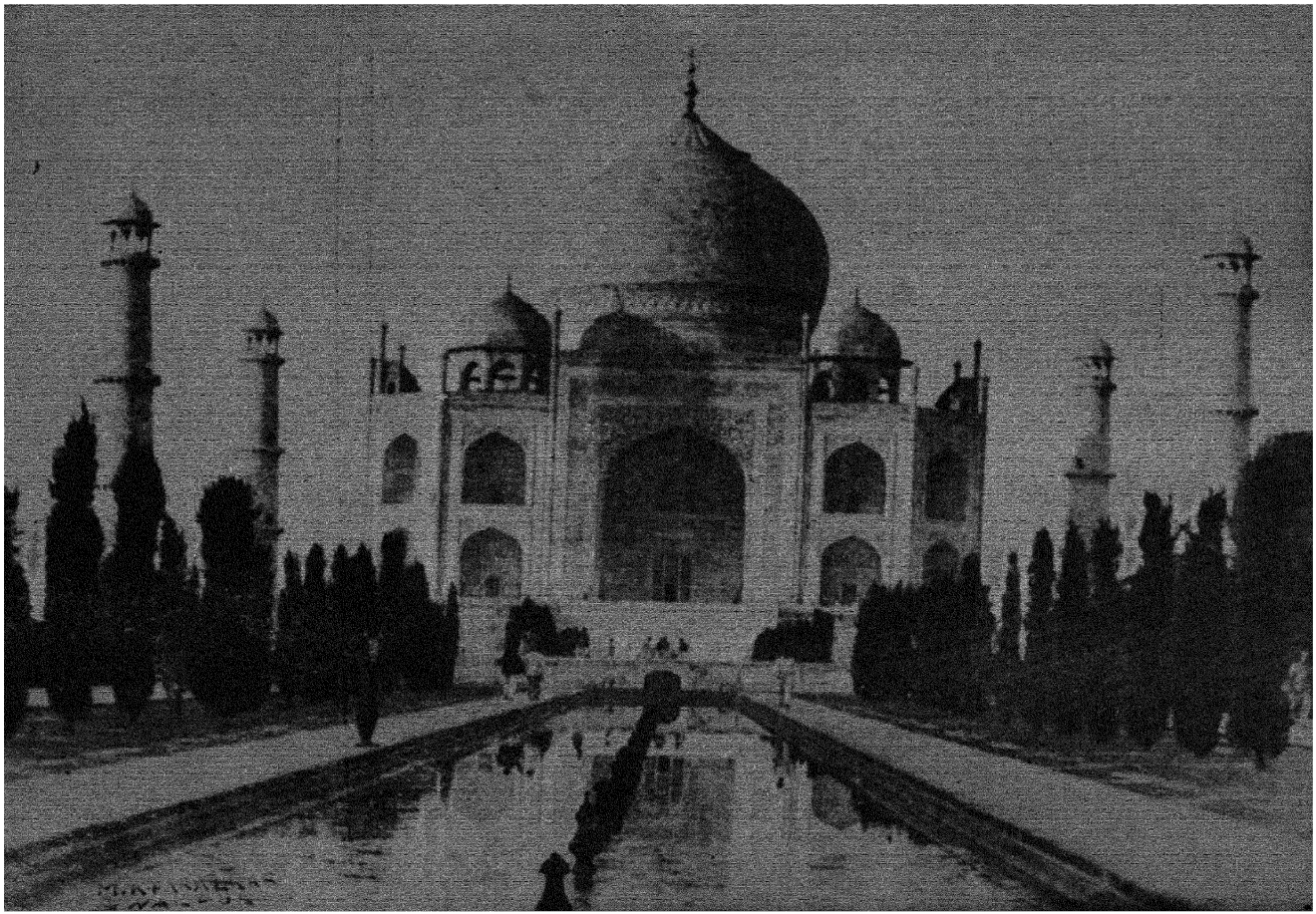

छन कर हलका सा प्रकाश आता रहता है। सीढ़ियाँ उतर कर, नीचे मुमताज महल और शाहजहाँ की समाधियाँ मिलती हैं। इन्हें चारों ओर से अष्ट-कोण की जाली घेरे हुये है। इस जाली पर इतना बारीक काम किया गया है कि कुछ न पूछो। कहते हैं कि इस जाली के बनने में दस वर्ष लग गये थे। पहले शाहजहाँ का विचार था कि यमुना के दूसरी ओर वे एक और रोज़ा बनवावें, जिसमें मृत्यु के पश्चात् उनकी समाधि बना दी जावे पर विधाता को यह स्वीकार न हुआ। समाधि-गृह का वातावरण बहुत शांत है। दर्शक भी वहाँ चुपचाप खड़ा रहता है, 'जो सो रहे हैं, वे कहीं जग न जांय' वह अपनी भेंट चढ़ाकर ऊपर चला आता है। ताज के चबूतरे के चारों कोनों पर मीनारें हैं। उनके पश्चिम की ओर एक मस्जिद है और पूर्व की ओर एक अन्य इमारत, जो सम्भवतः विश्राम-स्थल है।

मुमताज़ बेगम का असली नाम अर्जुमन्द बानू बेगम था। बहुत कम आयु में ही बुरहानपुर में उनका देहांत हो गया। वे अपने स्वामी के साथ, उनके विशाल साम्राज्य को देखने निकली थीं। कुछ समय बाद उनकी अस्थियाँ आगरे लाई गईं और सन् १६३२ से ताज के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसमें बीस हजार कारीगरों ने लगातार बीस वर्ष तक कार्य किया। इसकी लागत के बारे में लोगों के अलग-अलग अन्दाज़ हैं, यह निधि पचास लाख से चार करोड़ तक आंकी जाती है पर क्या उन शिल्पियों की साधना उनके पारिश्रमिक पर आंकी जा सकती है, जो न केवल भारत के विभिन्न प्रान्तों से वरन् सुदूर बग़दाद, शीराज़ और बसरा से आये थे? जिन्होंने निर्जीव पाषाण में प्राणों की प्रतिष्ठा की थी।

मुमताज़ महल की मृत्यु १७ जून, १६३१ में हुई, उसके लगभग ६ महीने पश्चात् उनकी अस्थियाँ आगरे लाईं गईं और १६३२ ई. से निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया। ताज के द्वार पर अंकित लेख से पता चलता है कि वह १६४७ में लगाया गया। विदेशी यात्री टैवर्नियर ने लिखा है कि यह कार्य १६५३ तक पूरा नहीं हो पाया था। इसका प्रबन्ध मुकरामत खान और मीर अब्दुल करीम के हाथों में था।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि इसका 'प्लॉन' किसने तैयार किया? कुछ विद्वानों का मत है कि वह उस्ताद इशा थे। डा० वर्जेस की राय

है कि यह फ़ारस के एक कारीगर अली मर्दान खाँ थे। जो भी हो यह तो हुमाऊँ के मकबरे को ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता ही है कि ताज के निर्माताओं को अपनी पूर्व-परम्परा उसी से मिली है।

ताज देखने के बाद मैं सिकन्दरा गया, जहाँ सम्राट अकबर की समाधि है। यह जहाँगीर की बनवाई हुई एक आलीशान इमारत है। मुग़ल सम्राटों के दर्बार में विश्व भर के कलाकार आ जुड़े थे। इन इमारतों से यह निश्चय नहीं हो पाता कि इसमें किस देश की कला की कितनी दैन है, पर उसमें छतरी आदि से भारतीय कला का स्पष्ट प्रभाव अवश्य दिखाई देता है।

फ़तहपुर सीकरी यहाँ २५-२६ मील ही दूर है पर छुट्टी ख़तम हो चुकी है, जो बढ़ाई थी वह भी समाप्त हो गई।

मैं कल कलकत्ते लौट जाऊँगा। मैंने तुम्हारे लिए एक छोटा सा संगमर्मर का ताज खरीद लिया है, जब आऊँगा, तब लेता आऊँगा।

तुम्हारा—
जगदीश दादा